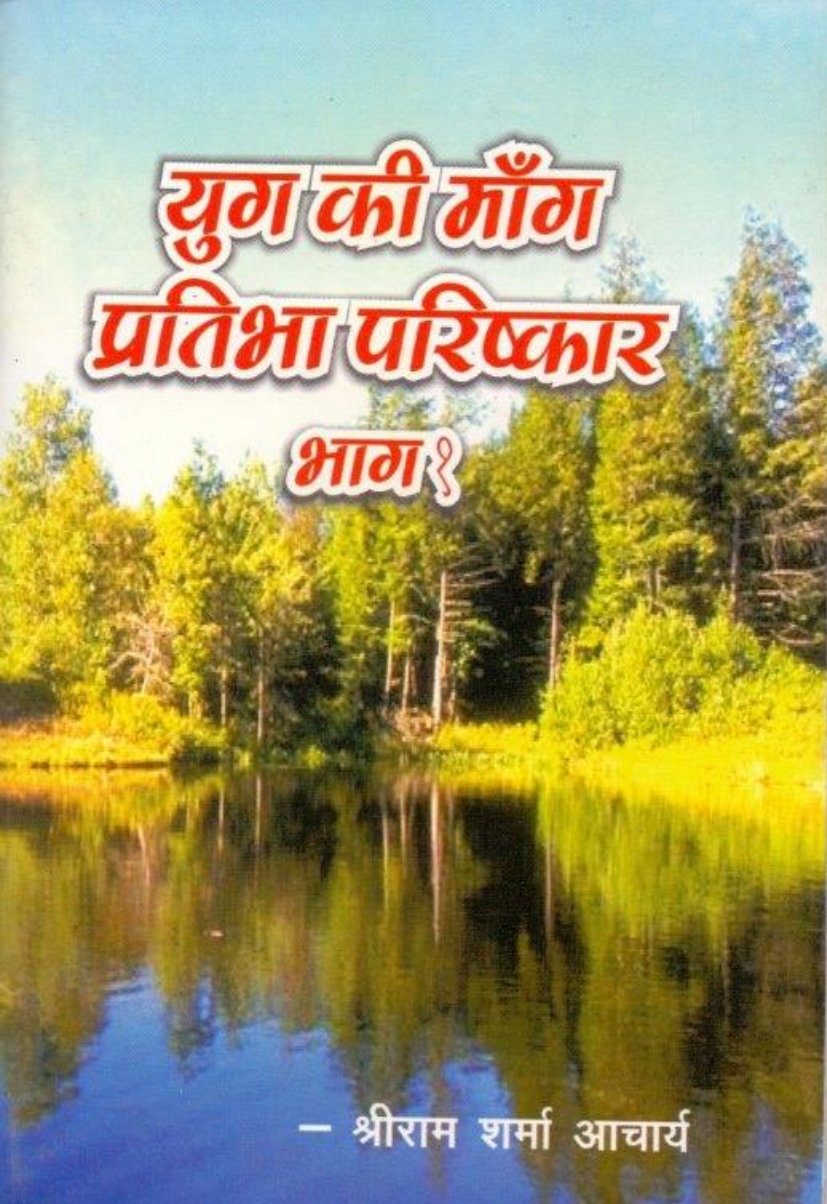
युग की माँग
प्रतिभा परिष्कार
भाग १
— श्रीराम शर्मा आचार्य

युग की माँग : प्रतिभा परिष्कार

(भाग-१)

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११

मूल्य : १०.०० रुपये

सार-संक्षेप

भगवत्सत्ता का निकटतम और सुनिश्चित स्थान एक ही है, अंतराल में विद्यमान प्राणाग्नि । उसी को जानने-उभारने से वह सब कुछ मिल सकता है, जिसे धारण करने की वसता मनुष्य के पास है । प्राणवान् प्रतिभासंपन्नों में उस प्राणाग्नि का अनुपात सामान्यों से अधिक होता है । उसी को आत्मबल-संकल्पबल भी कहा गया है ।

पारस को छूकर लोहा सोना बनता भी है या नहीं ? इसमें किसी को संदेह हो सकता है, पर यह सुनिश्चित है कि महाप्रतापी-आत्मबलसंपन्न व्यक्ति असंख्यों को अपना अनुयायी-सहयोगी बना लेते हैं । इन्हीं प्रतिभावानों ने सदा से जमाने को बदला है—परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनाई है । प्रतिभा किसी पर आसमान से नहीं बरसती, वह तो अंदर से जागती है । सवर्णों को छोड़कर वह कबीर और रैदास को भी वरण कर सकती है । बलवानों, सुंदरों को छोड़कर गाँधी जैसे कमजोर शरीर वाले व चाणक्य जैसे कुरूपों का वरण करती है । जिस किसी में वह जाग जाती है, साहसिकता और सुव्यवस्था के दो गुणों में जिस किसी को भी अभ्यस्त-अनुशासित कर लिया जाता है, सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुल जाता है । प्रतिभा परिष्कार-तेजस्विता का निखार आज की अपरिहार्य आवश्यकता है एवं इसी आधार पर नवयुग की आधारशिला रखी जाएगी ।

प्राणवान् प्रतिभाओं की खोज

समय की माँग के अनुरूप, दो दबाव इन दिनों निरंतर बढ़ते जा रहे हैं । एक व्यापक अवांछनीयताओं से जूझना और उन्हें परास्त करना; दूसरा है नवयुग की सृजन व्यवस्था को कार्यान्वित करने की समर्थता । निजी और छोटे क्षेत्र में भी यह दोनों कार्य अति कठिन पड़ते हैं; फिर जहाँ देश, समाज या विश्व का प्रश्न है, वहाँ तो कठिनाई का अनुपात असाधारण होगा ही ।

प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए तदनुरूप योग्यता एवं कर्मनिष्ठा उत्पन्न करनी पड़ती है । साधन जुटाने पड़ते हैं । इनके बिना सामान्य स्थिति में रहते हुए किसी प्रकार दिन काटते ही बन पड़ता है । इसी प्रकार कठिनाइयों से जूझने, अड़चनों को निरस्त करने और मार्ग रोककर बैठे हुए अवरोधों को किसी प्रकार हटाने के लिए समुचित साहस, शौर्य और सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है । अनेकों समस्याएँ और कठिनाइयाँ, आए दिन त्रास और संकट भरी परिस्थितियाँ बनी ही रहती हैं । जो कठिनाइयों से जूझ सकता है और प्रगति की दिशा में बढ़ चलने के साधन जुटा सकता है, उसी को प्रतिभावान् कहते हैं ।

प्रतिभा की निजी जीवन के विकास में निरंतर आवश्यकता पड़ती है और अवरोधों को निरस्त करने में भी । जो आगे बढ़े—ऊँचे उठे हैं, उन्हें यह दोनों ही सरंजाम जुटाने पड़े । उत्कर्ष की सूझ-बूझ और कठिनाइयों से लड़ सकने की हिम्मत, इन दोनों के बिना उन्नतिशील जीवन जी सकना संभव ही नहीं होता । फिर सामुदायिक सार्वजनिक क्षेत्र में सुव्यवस्था बनाने के लिए और भी अधिक प्रखरता चाहिए । यह विशाल क्षेत्र आवश्यकताओं और गुत्थियों की दृष्टि से तो और भी बढ़ा-चढ़ा होता है ।

मनुष्यों की आकृति-प्रकृति तो एक जैसी होती है, पर उनके स्तरों में भारी भिन्नता पाई जाती है । हीन स्तर के लोग परावलंबी होते हैं ।

वे आँखें बंद करके दूसरों के पीछे चलते हैं । औचित्य कहाँ है, इसकी विवेचना बुद्धि इनमें नहीं के बराबर होती है । वे साधनों के लिए, मार्गदर्शन के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं; यहाँ तक कि जीवनोपयोगी साधन तक अपनी स्वतंत्र चेतना के बलबूते जुटा नहीं पाते । उनके उत्थान-पतन का निमित्त कारण दूसरे ही बने रहते हैं । यह परजीवी वर्ग ही मनुष्यों में बहुलता के साथ पाया जाता है । अनुकरण और आश्रय ही उनके स्वभाव के अंग बनकर रहते हैं । निजी निर्धारण कदाचित् ही कभी कर पाते हैं । यह हीन वर्ग है, संपदा रहते हुए भी इन्हें दीन ही कहा जा सकता है ।

दूसरा वर्ग वह है जो समझदार होते हुए भी संकीर्ण स्वार्थपरता से घिरा रहता है । योग्यता और तत्परता जैसी विशेषताएँ होते हुए भी वे उन्हें मात्र लोभ, मोह, अहंकार की पूर्ति के लिए ही नियोजित किए रहते हैं । उनकी नीति अपने मतलब से मतलब रखने की होती है । आदर्श उन्हें प्रभावित नहीं करते । कृपणता और कायरता के दबाव से वे पुण्य परमार्थ की बात तो सोच ही नहीं पाते, अवसर मिलने पर अनुचित कर बैठने से भी नहीं चूकते, महत्त्व न मिलने पर वे अनर्थ कर बैठते हैं । गूलर के भुनगे जैसी स्वकेंद्रित जिंदगी ही जी पाते हैं । बुद्धिमान् और धनवान् होते हुए भी इन लोगों को निर्वाह भर में समर्थ 'प्रजाजन' ही कहा जाता है । वे जिस तिस प्रकार जी तो लेते हैं, पर श्रेय सम्मान जैसी किसी मानवोचित उपलब्धि के साथ उनका कोई संबंध ही नहीं जुड़ता है । उन्हें जनसंख्या का एक घटक भर माना जाता है । फिर भी वे दीन-हीनों की तरह परावलंबी या भारभूत नहीं होते । उनकी गणना व्यक्तित्व की दृष्टि से अपंग, अविकसित और असहायों में नहीं होती । कम-से-कम अपना बोझ अपने पैरों पर तो उठा लेते हैं ।

तीसरा वर्ग प्रतिभाशालियों का है । वे भौतिक क्षेत्र में कार्यरत रहते हैं, तो अनेक व्यवस्थाएँ बनाते हैं । अनुशासन में रहते और अनुबंधों से बँधे रहते हैं । अपनी नाव अपने बलबूते खेते हैं और उसमें बिठाकर अन्य कितनों को ही पार करते हैं । बड़ी योजनाएँ बनाते और चलाते हैं । कारखानों के व्यवस्थापक और शासनाध्यक्ष प्रायः इन्हीं विशेषताओं से संपन्न होते हैं । जिन्होंने महत्त्वपूर्ण सफलताएँ पाईं, उपलब्धियाँ हस्तगत कीं, प्रतिस्पर्धाएँ जीतीं, उनमें ऐसी ही मौलिक सूझ-बूझ होती है । बोल-चाल की भाषा में उन्हें ही प्रतिभावान् कहते हैं । अपने वर्ग का नेतृत्व भी वही करते हैं । गुत्थियाँ सुलझाते और सफलताओं का पथ प्रशस्त करते हैं । मित्र और शत्रु सभी उनका लोहा मानते हैं । मरुस्थल में उद्यान खड़े करने जैसे चमत्कार भी उन्हीं से बन पड़ते हैं । भौतिक प्रगति का विशेष श्रेय यदि उन्हें ही दिया जाए तो अत्युक्ति न होगी । सूझ-बूझ के धनी, एक साथ अनेक पक्षों पर दृष्टि रख सकने की क्षमता भी तो उन्हीं में होती है । समय सबके पास सीमित है । कुछ लोग उसे ऐसे ही दैनिक ढर्रों के कार्यों में गुजार देते हैं; पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो एक ही समय में, एक ही शरीर-मस्तिष्क से, अनेकों ताने-बाने बुनते और अनेकों जाल-जंजाल सुलझाते हैं । सफलता और प्रशंसा उनके आगे-पीछे फिरती है । अपने क्षेत्र, समुदाय या देश की प्रगति ऐसे सुव्यवस्थित प्रतिभावानों पर ही निर्भर रहती है ।

सबसे ऊँची श्रेणी देव-मानवों की है, जिन्हें महापुरुष भी कहते हैं । प्रतिभा तो उनमें भरपूर होती है, पर वे उसका उपयोग आत्म परिष्कार से लेकर लोकमंगल तक के उच्चस्तरीय प्रयोजनों में ही किया करते हैं । निजी आवश्यकताओं और महत्त्वाकांक्षाओं को घटाते हैं; ताकि बचे हुए शक्ति भंडार को परमार्थ में नियोजित कर सकें । समाज के उत्थान और सामयिक समस्याओं के समाधान का श्रेय उन्हें ही जाता है । किसी देश

की सच्ची संपदा वे ही समझे जाते हैं जो अपने कार्यक्षेत्र को नंदनवन जैसा सुवासित करते हैं । वे जहाँ भी बादलों की तरह बरसते हैं, वहीं मखमली हरीतिमा का फर्श बिछा देते हैं । वे वसंत की तरह अवतरित होते हैं । अपने प्रभाव से वृक्ष-पादपों को सुगंधित, सुरभित पुष्पों से लाद देते हैं । वातावरण में ऐसी उमंगें भरते हैं, जिससे कोयलें कूकने, भौंरे गूँजने और मोर नाचने लगें ।

बड़े कामों को बड़े शक्ति केंद्र ही संपन्न कर सकते हैं । दलदल में फँसे हाथी को बलवान् हाथी ही खींचकर पार करते हैं । पटरी से उतरे इंजन को समर्थ क्रेन ही उठाकर यथा स्थान रखती हैं । उफनते समुद्र में से नाव खे लाना, साहसी नाविकों से ही बन पड़ता है । समाज और संसार की बड़ी समस्याओं को हल करने के लिए, ऐसे ही वरिष्ठ प्रतिभावानों की आवश्यकता पड़ती है । पुल, बाँध, महल, किले जैसे निर्माणों में मूर्द्धन्य इंजीनियरों की आवश्यकता पड़ती है । पेचीदा गुत्थियों को सुलझाना किन्हीं मेधावियों से ही बन पड़ता है । प्रतिभाएँ वस्तुतः ऐसी संपदाएँ हैं, जिनसे न केवल प्रतिभाशाली स्वयं भरपूर श्रेय अर्जित करते हैं, वरन् अपने क्षेत्र, समुदाय और देश की अति विकट दीखने वाली उलझनों को भी सुलझाने में सफल होते हैं । इसी कारण भावनावश ऐसे लोगों को देवदूत तक कहते हैं ।

आड़े समय में इन उच्चस्तरीय प्रतिभाओं की ही आवश्यकता होती है । उन्हीं को खोजा, उभारा और खरीदा जाता है । विश्व के इतिहास में ऐसे ही महामानवों की यशगाथा स्वर्णिम अक्षरों में लिखी मिलती है । संसार के अनेक सौभाग्यों और सुंदरताओं में अधिक मूर्द्धन्य महाप्राणों के व्यक्तित्व ही सबसे अधिक चमकते हैं । वे अपनी यशगाथा से असंख्यों का, अनंतकाल तक मार्गदर्शन करते रहते हैं । स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि के नाम से आध्यात्मिक भाषा में जिन महान् उपलब्धियों का अलंकारिक रूप

से वर्णन किया जाता है, उनका सारतत्त्व वस्तुतः ऐसे ही महामनीषियों को करतलगत होता है । दूसरे लोग पूजा-पाठ के सहारे कुछ मिलने की आशा करते हैं, पर मनस्वी, तेजस्वी और ओजस्वी ऐसे कर्मयोग की साधना में ही निरत रहते हैं, जो उनके व्यक्तित्व को प्रामाणिक और कर्तृत्त्व को ऊर्जा का उद्गम स्रोत सिद्ध कर सकें ।

वर्तमान समय विश्व इतिहास में अद्भुत एवं अभूतपूर्व स्तर का है । इसमें एक ओर महाविनाश का प्रलयंकर तूफान अपनी प्रचंडता का परिचय दे रहा है, तो दूसरी ओर सतयुगी नवनिर्माण की उमंगें भी उछल रही हैं । विनाश और विकास एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हैं, तो भी उनका एक ही समय में अपनी-अपनी दिशा में चल सकना संभव है । इन दिनों आकाश में सघन तमिस्रा का साम्राज्य है, तो दूसरी ओर ब्रह्ममुहूर्त का आभास भी प्राची में उदीयमान् होता दीख पड़ता है । इन दोनों के समन्वय को देखते हुए ही अपना समय युगसंधि का समय माना गया है । ऐसे अवसरों पर किन्हीं प्रखर-प्राणवानों को ही अपनी सही भूमिका निभानी पड़ती है ।

त्रेता में एक ओर रावण का आसुरी आतंक छाया हुआ था, दूसरी ओर रामराज्य वाले सतयुग की वापसी, अपने प्रयास-पुरुषार्थ का परिचय देने के लिए मचल रही थी । इस विचित्रता को देखकर सामान्यजन भयभीत थे । राम के साथ लड़ने के लिए उन दिनों के एक भी राजा की शासकीय सेनाएँ आगे बढ़कर नहीं आईं । फिर भी हनुमान्, अंगद के नेतृत्व में रीछ-वानरों की मंडली जान हथेली पर रख आगे आई और समुद्र सेतु बाँधने, पर्वत उखाड़ने, लंका का विध्वंस करने में समर्थ हुई । राम ने उनके सहयोग की भाव भरे शब्दों में भूरि-भूरि प्रशंसा की । इस सहायक समुदाय में गीध, गिलहरी, केवट, शबरी जैसे कम सामर्थ्यवानों का भी सदा सराहने योग्य सहयोग सम्मिलित रहा । महाभारत के समय

भी ऐसी ही विपन्नता थी । एक ओर कौरवों की विशाल संख्या वाली सुशिक्षित और समर्थ सेना थी, दूसरी ओर पांडवों का छोटा-सा अशक्त समुदाय । फिर भी युद्ध लड़ा गया । भगवान् ने सारथी की भूमिका निबाही और अर्जुन ने गांडीव से तीर चलाए । जीत शक्ति की नहीं; सत्य की, नीति की, धर्म की हुई । इन उदाहरणों में गोवर्धन उठाने वाले ग्वाल-बालों का सहयोग भी सम्मिलित है । बुद्ध की भिक्षु मंडली और गाँधी की सत्याग्रही सेना भी इसी तथ्य का स्मरण दिलाती है । प्रतिभा ने नेतृत्व सँभाला, तो सहयोगियों की कमी नहीं रही । संसार के हर कोने से, हर समय में ऐसे चमत्कारी घटनाक्रम प्रकट होते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि सत्य की शक्ति अजेय है । उच्चस्तरीय प्रतिभाएँ उसे गंगावतरण काल के जैसे प्रयोजन में और परशुराम जैसे ध्वंस प्रयोजनों में प्रयुक्त करती रही हैं । महत्त्व घटनाक्रमों और साधनों का नहीं रहा, सदैव मूर्द्धन्य प्रतिभाओं ने ही महान् समस्याओं का हल निकालने में प्रमुख भूमिका निबाही है ।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त की प्रतिभा को पहचाना, उसे अपनी सामर्थ्य का बोध कराया व कुछ पुरुषार्थ कर दिखाने को आगे धकेला तो असमंजस में उलझा नगण्य-सा वह व्यक्ति असामान्य कार्य कर दिखा पाने में समर्थ हुआ । प्राणनाथ महाप्रभु ने वीर छत्रसाल जैसी प्रतिभा को पहचाना व उसे वह शक्ति दी जिसने उसे उत्तर भारत में आक्रांताओं से भारतीय संस्कृति की रक्षा करने का साहस प्रदान किया । विवेकानंद जैसी प्रतिभा नरेंद्र नाम के युवक में छिपी है, यह रामकृष्ण ही जान पाए एवं अपनी शक्ति का अंश देकर वे विश्व को एक महामानव दे गए । समय-समय पर परोक्ष चेतना, समस्याओं के निवारण हेतु प्रतिभाओं को ही खोजती रही है ।

इन दिनों व्यक्तिगत समस्याओं का शिकंजा भी कम कसा हुआ नहीं है । आर्थिक, सामाजिक, मानसिक क्षेत्रों में छाई हुई विभीषिकाएँ, सर्वसाधारण को चैन से जी सकने का अवसर नहीं दे रही हैं । इससे भी बढ़कर सार्वजनिक समस्याएँ हैं । संसार के सामने कितनी ही चुनौतियाँ हैं । बढ़ती हुई गरीबी, बेकारी, बीमारी, प्रदूषण, जनसंख्या वृद्धि, परमाणु विकिरण, युद्धोन्माद का बढ़ता दबाव, अंतरिक्ष क्षेत्र में धूमकेतु की तरह अपनी विकरालता का परिचय दे रहा है । हिमप्रलय, जलप्रलय, दुर्भिक्ष, भूकंपों आदि के माध्यम से प्रकृति अपने प्रकोप का परिचय दे रही है । मनुष्य की बौद्धिक भ्रष्टता और व्यवहारिक दुष्टता से, वह भी तो कम अप्रसन्न नहीं है । भविष्यवक्ता इन दिनों की विनाश विभीषिका की संभावना की जानकारी, अनेक स्तरों पर देते रहे हैं । दीखता है कि वह महाविनाश कहीं अगले दिनों घटित ही तो होने नहीं जा रहा है ?

पक्ष दूसरा भी है—इक्कीसवीं सदी की ऐसी सुखद संभावना, जिसे सतयुग की वापसी कहा जा सके । इन दोनों ही प्रयोजनों में आवश्यक मानवी भूमिका का समावेश होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इस कार्य को मूर्द्धन्य प्रतिभाएँ ही संपन्न कर सकेंगी । ईश्वर, धर्म का संरक्षण और अधर्म के विनाश का काम तो करता है, पर अदृश्य प्रेरणा का परिवहन तो शरीरधारी महामानव ही करते हैं । आज उन्हीं की खोज है । उन्हीं को आकुल-व्याकुल होकर ढूँढ़ा जा रहा है । दीन-हीन और पेट-प्रजनन में निरत तो असंख्य प्रजाजन सर्वत्र बिखरे पड़े हैं । पर वे तो अपने भार से ही दबे हैं, अपनी ही लाश ढो रहे हैं । युग परिवर्तन जैसे सृजन और ध्वंस के महान् प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्राणवानों की आवश्यकता है । गोताखोर उन्हीं को इस खारे समुद्र में से मणिमुक्तकों की तरह ढूँढ़ निकालने में लगे हुए हैं ।

विशिष्टता का नए सिरे से उभार

दूध में मक्खन घुला होता है, पर उसे अलग निकालने के लिए उबालने, मथने जैसे कई कार्य संपन्न करने पड़ते हैं । प्राणवान् प्रतिभाओं की इन दिनों अतिशय आवश्यकता पड़ रही है, ताकि इस समुद्र मंथन जैसे युगसंधि पर्व में अपनी महती भूमिका निभा सकें । अनिष्ट के अनर्थ से मानवीय गरिमा को विनष्ट होने से बचा सके । उज्ज्वल भविष्य की संरचना में ऐसा प्रचंड पुरुषार्थ प्रदर्शित कर सकें; जैसे—गंगा अवतरण के संदर्भ में मनस्वी भगीरथ द्वारा संपन्न किया गया था ।

इन दिनों यह ढूँढ़-खोज ही बड़ा काम है । सीता को वापस लाने के लिए वानर समुदाय विशेष खोज में निकला था । समुद्र-मंथन भी ऐसी खोज का एक इतिहास है । गहरे समुद्र में उतरकर मणि-मुक्तक खोजे जाते हैं । कोयले की खदानों में से खोजने वाले हीरे ढूँढ़ निकालते हैं, धातुओं की खदान इसी प्रकार धरती को खोद-खोदकर ढूँढ़ी जाती है । दिव्य ओषधियों को सघन वन प्रदेशों में खोजना पड़ता है । वैज्ञानिक प्रकृति के रहस्यों को खोज लेने का काम करते हैं । हाड़-मांस की काया में से देवत्व का उदय, साधना द्वारा गहरी खोज करते हुए ही संभव किया जाता है । महाप्राणों की इन दिनों इसी कारण भारी खोज हो रही है कि उनके बिना, युगसंधि का महाप्रयोजन पूरा भी तो नहीं हो सकेगा । आज तो व्यक्ति की सामयिक एवं क्षेत्रीय समस्याओं का निराकरण भी वातावरण बदले बिना संभव नहीं हो सकता । संसार में निकटता बढ़ जाने से, गुत्थियाँ भी वैयक्तिक न रहकर सामूहिक हो गई हैं । उनका निराकरण व्यक्ति को कुछ ले-देकर नहीं हो सकता । चेचक की फुंसियों पर पट्टी कहाँ बाँधते हैं ? स्थायी उपचार तो रक्त-शोधन की प्रक्रिया से ही बन पड़ता है ।

प्रस्तुत चिंतन और प्रचलन में इतनी अधिक विकृतियों का समावेश हो गया है कि उन्हें औचित्य एवं विवेक से सर्वथा प्रतिकूल माना जा सकता है । अस्वस्थता, उद्विग्नता, आक्रामकता, निष्ठुरता, स्वार्थांधता, संकीर्णता, उद्दंडता का बड़ों और छोटों में अपने-अपने ढंग का बाहुल्य है । लगता है मानवीय मर्यादाओं और वर्जनाओं की प्रतिबद्धता से इनकार कर दिया गया है । फलतः व्यक्ति को अनेकानेक संकटों और समाज को चित्र-विचित्र समस्याओं का सामना करना पड़ता है । न कोई सुखी दिखता है न संतुष्ट । अभाव और जन बाहुल्य नई-नई विपत्तियाँ खड़ी कर रहे हैं । हर कोई आतंक और आशंका से विक्षुब्ध जैसा दिखता है ।

इन सबसे जूझने के लिए एक सुविस्तृत मोरचेबंदी करनी होगी । सामान्यजन तो अपनी निजी आवश्यकताओं, उलझनों तक का समाधान नहीं कर पाते, फिर व्यापक बनी हर क्षेत्र में समाई विपन्नताओं से जूझने के लिए उनसे क्या कुछ बन पड़ेगा ? इस कठिन कार्य को संपन्न करने के लिए विशिष्टतायुक्त प्रतिभाएँ चाहिए । बड़े युद्धों को जीतना वरिष्ठ सेनानायकों द्वारा अपनाई गई रणनीति और सूझ-बूझ के सहारे ही संभव हो पाता है । यही बात बड़े सृजनों के संबंध में भी है । ताजमहल जैसी इमारत बनाने, चीन की दीवार खड़ी करने, हाबड़ा जैसे पुल खड़े करने जैसे महापुरुषार्थों के लिए वरिष्ठ लोगों की, वस्तुस्थिति के साथ तालमेल बिठाकर चलने वाली नीति ही सफल होती है । उनके लिए आवश्यक साधन एवं सहयोग जुटाना भी हँसी-खेल नहीं होता । बड़ी प्रतिभाएँ ही बड़ी योजनाएँ बनाती हैं, वे ही उतने भारी-भरकम दायित्व उठाती हैं । छोटे तो समर्थन भर देते हैं । सफलता पर हर्ष और असफलता पर विषाद् प्रकट करने भर की उनमें क्षमता होती है ।

इन दिनों दो कार्य प्रमुख हैं—विपन्नता से जूझना और उन्हें निरस्त करना, साथ ही नवसृजन की ऐसी आधारशिला रखना, जिससे अगले ही दिनों संपन्नता, बुद्धिमत्ता, कुशलता और समर्थता का सुहावना माहौल बन पड़े । इक्कीसवीं सदी को दूरदर्शी लोग सर्वतोमुखी प्रगति की संभावनाओं से भरी-पूरी मानते हैं । उस अवधि में सतयुग की वापसी पर विश्वास करते हैं । इस मान्यता के अनेकों कारण भी हैं । उनमें से एक यह है कि इन्हीं दिनों समर्थ प्रतिभाओं का सृजन, उन्नयन और प्रखरीकरण तेजी से हो रहा है । संभवतः अदृश्य शक्ति का ही इसमें हाथ हो ? ऐसी शक्ति का जो समय-समय पर आड़े समय में बिगड़ता संतुलन सँभालने के लिए अपने वर्चस्व का प्रकटीकरण करती रही है । कहना न होगा कि तेजस्वी प्रतिभाएँ ही भौतिक समृद्धि बढ़ाने, प्रगति का वातावरण उत्पन्न करने और अंधकार भरे वर्तमान को उज्ज्वल भविष्य में परिणत करने का श्रेय संपादित करती रही हैं । उन्हें ही किसी देश, समाज एवं युग की वास्तविक शक्ति एवं संपदा माना जाता है । स्पष्ट है कि वे उदीयमान वातावरण में ही उगती और फलित होती हैं । वर्षा में हरीतिमा और वसंत में सुषमा का प्राकट्य होता है । प्रतिभाएँ अनायास ही नहीं बरस पड़तीं, न वे उद्भिजों की तरह उग पड़ती हैं । उन्हें प्रयत्नपूर्वक खोजा, उभारा और खरादा जाता है । इसके लिए आवश्यक एवं उपयुक्त वातावरण का सृजन किया जाता है ।

इन दिनों ऐसा ही कुछ चल रहा है । असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए महाकाल की कोई बड़ी योजना बन रही है । उसे मूर्त रूप देने के लिए दो छोटे किंतु अति महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम सामने आए हैं । एक है आदर्शवादी सहायकों में उमंगों का उभारना और एक परिसर-एक सूत्र में संबद्ध होना । साथ ही कुछ नियमित एवं सृजनात्मक गतिविधियों को प्रारंभ करना, जो सद्विचारों को सद्कार्यों में परिणत

कर सकने की भूमिका बना सकें । दूसरा कार्य यह है कि अनीति विरोधी मोरचा खड़ा किया जाए, उसे एक प्रयास से आरंभ करके विशाल-विकराल बनाया जाए । एक चिनगारी दावानल बनती है । छोटे बीज से वृक्ष बनता है । ध्वंस एवं सृजन दोनों का यही उपक्रम है—एक कदम शालीनता के सृजन का एवं दूसरा अनीति के दमन का । सत्प्रवृत्ति संवर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के दो मोरचे पर, दोधारी तलवार से, दो स्तर की रीति-नीति अपनाना । यह है वह अग्रगमन, जिस पर कदम-कदम बढ़ते हुए नवयुग का अवतरण संभव हो सकता है । उज्ज्वल भविष्य की सर्वतोमुखी प्रगति एवं चिरस्थायी शांति के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । इसी स्थिति में पहुँचने पर 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष, प्रचंड प्रयासों का मार्ग पूरा करते हुए अपनी यथार्थता का परिचय दे सकता है ।

इस महाजागरण से ही प्रतिभाओं की मूर्च्छना हटेगी । वे अँगड़ाई लेते हुए लंबी मूर्च्छना से पीछा छुड़ाती और दिनमान की ऊर्जा प्रेरणा से कार्य क्षेत्र में अपने पौरुष का परिचय देती दृष्टिगोचर होंगी । इस भवितव्यता को हम सब इन्हीं आँखों से अपने ही सामने मूर्त्तिमान होते हुए देखेंगे ।

प्रयत्नपूर्वक खदानों से हीरे खोज तो लिए जाते हैं; पर उन्हें चमकदार, बहुमूल्य और हार में शोभायमान स्थान पाने के लिए खरादना अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है । धातुएँ अनेक बार के अग्नि संस्कार से ही संजीवनी जैसे रसायनों के रूप में परिणत होते हैं । पहलवान अखाड़े में लंबा अभ्यास करने के उपरांत ही दंगल में विजयश्री वरण करते हैं । शिल्पी और कलाकार अपने विषय में प्रवीण-पारंगत बनने के लिए लंबे समय तक अभ्यासरत रहते हैं । प्रतिभाओं का प्रशिक्षण और परिवर्धन, आदर्शवादी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भूमिका निभाने के उपरांत ही

संभव हो पाता है । उस तथ्य के अनुरूप जहाँ प्रतिभाओं को खोजा जा रहा है, वहीं उनकी प्रखरता निखारने के लिए ऐसे कार्यों में जुटाया भी जा रहा है, जिनके कारण उनका ओजस्, तेजस् और वर्चस् जाज्वल्यमान् हो सके । विश्वामित्र ने दशरथ पुत्रों को, युगसृजन प्रयोजन के लिए, उपयुक्त समय पर उनकी तेजस्विता उभारने के लिए यज्ञ की रक्षा करने और असुरों से जूझने का काम सौंपा था । हनुमान्, अर्जुन आदि ने ऐसी ही अग्निपरीक्षाओं से गुजरते हुए असाधारण गौरव पाया था । इनसे बचकर किसी पर भी महानता आकाश से नहीं बरसी है । पराक्रम से जी चुराने वाले ही कृपणों-प्रमादियों की तरह, मात्र हाथ ही मलते रहते हैं ।

इन दिनों जन्मांतरों से संचित सुसंस्कारों वाली प्रतिभाएँ खोज निकाली गई हैं । उन्हें युगचेतना के साथ जोड़ा गया है । इन्हें नवसृजन साहित्य के माध्यम से पुष्प वाटिका में मधुमक्खियों की तरह, दिव्य सुगंध ने आमंत्रित किया है और उसी परिकर में छत्ता बनाकर रहने के लिए सहमत किया है । प्रज्ञा परिकर को इसी रूप में देखा, समझा और आँका जा सकता है । प्रजा परिजनों को युगसृजन का लक्ष्य लेकर अवतरित हुई दिव्य आत्माओं का समुदाय कहा जा सकता है । वे अंतरात्मा को अमृत पिलाने वाले, युगसाहित्य का रसास्वादन करते रहे हैं, मिशन की पत्रिकाएँ नियमित रूप से पढ़ते रहे हैं । युगचेतना की भाव भरी प्रेरणाओं का यथासंभव अनुसरण भी करते रहे हैं । उनके अब तक के योगदान को, परमार्थपुरुषार्थ को, मुक्त कंठ से सराहा जा सकता है, पर बड़े प्रयोजनों के लिए इतना ही तो पर्याप्त नहीं ? समय की बढ़ती माँग को देखते हुए, बड़े कदम भी तो उठाने पड़ेंगे । बच्चे का छोटा-सा पुरुषार्थ भी अभिभावकों द्वारा भली-भाँति सराहा जाता है, पर युवा होने पर बचपन की पुनरावृत्तियाँ करने भर से कौन यशस्वी बनता है ?

यहाँ परिजनों के पिछले दिनों के योगदान का मूल्यांकन घटाकर नहीं किया जा रहा है, पर इतने भर से बात तो नहीं बनती ? महाकाल की अभिनव चुनौती स्वीकारने के लिए उतने पर ही संतोष नहीं किया जा सकता, जो पिछले दिनों हो चुका है । यह लंबा संग्राम है—संभवतः प्रस्तुत परिजनों के जीवन भर चलते रहने वाला । इक्कीसवीं सदी आरंभ होने में अभी दस वर्ष से भी अधिक समय शेष है । इस युगसंधि वेला में तो हम सबको, उस स्तर की तप-साधना में संलग्न रहना है, जिसे भगीरथ ने अपनाया और धरती पर स्वर्गस्थ गंगा का अवतरण संभव कर दिखाया था । महामानवों के जीवन में कहीं कोई विराम नहीं होता । वे निरंतर अनवरत गति से, शरीर छूटने तक चलते ही जाते हैं । इतने पर भी लक्ष्य पूरा न होने पर जन्म-जन्मांतरों तक उसी प्रयास में निरत रहने का संकल्प सँजोए रहते हैं । इसी परंपरा का निर्वाह उन्हें भी करना है, जिन्हें अपनी प्रतिभा निखारनी और निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में ऐसी उपलब्धियाँ कमानी हों, जिन्हें प्रेरणाप्रद, अनुकरणीय, अभिनंदनीय एवं अविस्मरणीय कहा जा सके । अपने परिवार की प्रतिभाओं को उपेक्षित स्तर की नहीं रहना है । इनकी गणना उन लोगों में नहीं होनी चाहिए, जिन्हें परावलंबी या निर्वाह के लिए जीवित भर रहने वाला कहा जाता है ।

कमल पुष्प, सामान्य तालाब में उगने पर भी अपनी पहचान अलग बनाते और दूर से देखने वाले के मन पर भी अपनी प्रफुल्लता की प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं । अपना स्वरूप एवं स्तर ऐसा ही होना चाहिए ।

❑

प्रतिभा परिवर्धन के तथ्य और सिद्धांत

जनसाधारण के बीच प्रतिभाशाली अलग से चमकते हैं, जैसे पत्तों व काँटों के बीच फूल, तारों के बीच चंद्रमा । यह जन्मजात उपलब्धि नहीं है और न किसी का दिया हुआ वरदान । इसे भाग्यवश मिला हुआ आकस्मिक संयोग-सुयोग भी नहीं कहा जा सकता । वह स्वउपार्जित संपदा है । इस कार्य में दूसरे कुछ सहायक तो हो सकते हैं, पर प्रधानता तो अपने प्रबल प्रयास की ही रहती है ।

धन आता है और चला जाता है । रूप यौवन भी सामयिक है । उसका संबंध चढ़ते खून से है । किशोर और तरुण ही सुंदर दिखते हैं । इसके बाद ढलान आरंभ होते ही अवयवों में कठोरता और चेहरे पर रुक्षता की हवाइयाँ उड़ने लगती हैं । विद्या उतनी ही स्मरण रहती है, जितनी कि व्यवहार में काम आती है । मित्र, सहयोगी, संबंधी, सहायकों के मन बदलते रहते हैं । आवश्यक नहीं कि उनकी घनिष्टता सदा एक-सी बनी रहे । अधिकार भी चिरस्थायी नहीं हैं, समर्थन घटते ही वे दूसरों के हाथों चले जाते हैं । वयोवृद्धों के उत्पादन की, परिश्रम की क्षमता घट जाती है । आयुवृद्धि के साथ-साथ स्मरण शक्ति और स्फूर्ति भी जबाव देने लगती है । ऐसी दशा में तब कोई योजना बनाना और उसे चलाना भी, बस से बाहर हो जाता है । यह सब मरण के ही लक्षण हैं । जीवनी शक्ति का भंडार धीरे-धीरे चुकता है और फिर वह अंततः जबाव दे जाता है ।

विकासोन्मुख शरीर, चढ़ते खून और परिपक्व व्यक्तित्व वाले दिनों में ही रहता है । उसे भले ही कोई आलस्य-प्रमाद में गुजारे, भले ही कोई लिप्सा-लालसा की वेदी पर विसर्जित कर दे । कोई-कोई तो उन दिनों भी अतिवादी उद्दंडता दिखाने से नहीं चूकते । यह सब शक्तियों और संभावनाओं के भंडार मनुष्य जीवन के साथ खिलवाड़ करने जैसा

है । दूरदर्शी वे हैं, जो विभूतियों में सर्वश्रेष्ठ 'प्रतिभा' को मानते हैं और उसके संपादन हेतु प्राणपण से प्रयत्न करते हैं; क्योंकि वही हर स्थिति में साथ रहती है, अपनी तथा दूसरों की गुत्थियाँ सुलझाती है और जन्म-जन्मांतरों तक साथ रहकर, क्रमशः अधिकाधिक ऊँचे स्तर वाली परिस्थितियों का निर्माण करती रहती है । इस उपार्जन के लिए किए गए प्रयत्नों को ही, हर दृष्टि से सराहा और स्वर्ण संपदा की तरह किसी भी बाजार में भुनाया जा सकता है । भौतिक प्रगति में भी उसी के चमत्कार दिखते हैं और आदर्शवादी परमार्थ अपनाने वाली महानता को भी उसी के सहारे विकसित परिष्कृत होते हुए देखा जा सकता है ।

प्रतिभा परिष्कार के कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं । इन्हें उन सभी को हृदयंगम करने का प्रयत्न करना चाहिए, जो समुन्नत, सुसंस्कृत एवं यशस्वी सफल जीवन जीने के लिए उत्सुक हैं ।

प्रथम सिद्धांत अथवा आधार है—क्षमताओं का अभिवर्धन । उनके लिए निरंतर तत्परता का, तन्मयता का सुनियोजन । आलस्य-प्रमाद से बचकर सदा जागरूक और स्फूर्तिवान बने रहना । एक-एक क्षण को बहुमूल्य मानकर उन्हें सदुद्देश्यों में सुनियोजित रखने के लिए योजनाबद्ध आकलन । यही है वह मनःस्थिति जिसे 'महाजागरण' कहते हैं । आमतौर से लोक अर्द्ध-तंद्रा की स्थिति में जिंदगी को दरद की तरह जीते हैं । निर्वाह साधन पा लेने भर से उन्हें संतोष हो जाता है । वे भाव-तरंगें उठती ही नहीं, जो आज की तुलना में कल को अधिक परिष्कृत बनाने के लिए लालायित रहती और प्रयत्नरत होती हैं । प्रतिभा के उपासक इस दलदल से उबरते हैं और अपनी निखरती क्षमताओं को बचाकर, मूल्यवान पूँजी की तरह एकत्रित करते हैं । जो हस्तगत है, उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करते हैं । यही है कल्पवृक्ष का उत्पादन एवं उसका उद्देश्यपूर्ण सदुपयोग क्रियान्वयन ।

दूसरा चरण है—अपने व्यक्तित्व को चुंबकीय, आकर्षक एवं विश्वास स्तर का विकसित करना । यह मनुष्यता के साथ जुड़ने वाला प्राथमिक गुण है । इसके लिए अपना रहन-सहन ऐसा बनाना पड़ता है जैसा जागरूक, जिम्मेदार और सज्जनता संपन्नों का होना चाहिए । शरीर और मन की स्वच्छता, साथ ही शिष्टाचार का निर्वाह और वाणी में मधुरता का गहरा पुट लगाए रहना भी आवश्यक है । इसके लिए अपनी नम्रता का परिचय देना और दूसरों को सम्मान देना आवश्यक है । उसे वे ही कर पाते हैं जो दूसरों के गुण देखकर उनसे प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं, साथ ही अपनी त्रुटियों को खोजते एवं उनके निष्कासन-परिष्कार में लगे रहते हैं । ओछे व्यक्ति अपनी शेखी बघारते और दूसरों के दोष गिनाते रहते हैं । उसी जंजाल में उनका चिंतन एवं वर्चस्व घटता और समाप्त होता रहता है ।

प्रतिभावानों के होठों पर मंद-मुस्कान देखी जाती है । इसी आधार पर यह जाना जाता है कि वे अपने आप में संतुष्ट और प्रसन्न हैं । दूसरे भी ऐसे ही लोगों का सहारा ताकते और साथ देते हैं । खीजते और खिजाते रहने वालों को दूर से ही नमस्कार करने को जी करता है, जिन्हें अपना सही मूल्यांकन करना है, वे इस प्रकार की भूलें नहीं करते । यदि वे आदत में सम्मिलित होने लगें तो उन्हें बुहार फेंकने की मुस्तैदी दिखाते हैं ।

तीसरा चरण है—सुव्यवस्था । अस्त-व्यस्त स्थिति में ही, प्रचुर साधन रहते हुए भी लोग असफल रहते और उपहासास्पद बनते हैं । प्रतिभाएँ क्षण-क्षण में अपने कार्यों और नियोजनों की समीक्षा करती रहती हैं तथा उन्हें सही बनाने के लिए जो हेर-फेर करना आवश्यक होता है, उसे बिना हिचक तत्परतापूर्वक करती हैं । जड़ता, हठवादिता के शिकंजे में जकड़ने का उन्हें तनिक भी आग्रह नहीं होता । वे जानते

हैं कि प्रगतिशीलों को सदा परिस्थितियों के अनुरूप रणनीति बनानी और चलते ढर्रे में आवश्यक सुधार लाने की चेष्टा करनी पड़ती है । व्यवस्था इसी प्रकार बन पड़ती है । जो अपने समय का, श्रम का, साधनों का, विचारों का, परिवार परिकर का सुनियोजन कर सकता है और उन्हें सही दिशा दे सकने में समर्थ हो सकता है, उसी को इस योग्य समझा जाता है कि वह कोई बड़ी या अतिरिक्त जिम्मेदारी को वहन कर सके । किन्हीं बढ़ी-चढ़ी महत्त्वाकांक्षाएँ सँजोने से पूर्व यह प्रमाण देना पड़ता है कि व्यक्तित्व, परिकर एवं क्रियाकलापों में किस सीमा तक व्यवस्था बुद्धि का उपयोग किया गया और उन्हें कितना सफल-समुन्नत बनाकर दिखाया गया ।

चौथा व अंतिम सूत्र है—अग्रगमन-नेतृत्व । यह उत्साह, साहस और आत्मविश्वास का प्रतीक है । साधारण जन आत्महीनता से ग्रसित, झिझक, संकोच, अनिश्चय एवं साहसहीनता की मनःस्थिति में पड़े पाए जाते हैं । वे उचित कार्यों के लिए भी कदम बढ़ाने का साहस नहीं कर पाते । अधिक-से-अधिक इतना ही सोचते हैं कि कोई बढ़े तो उसके पीछे चलने लगें । ऐसे लोग उचित निष्कर्ष निकाल लेने पर भी उस मार्ग का अवलंबन नहीं कर पाते । अपनी स्थिति को अनुपयुक्त मानते हुए भी उस परिधि से एक कदम भी आगे नहीं रख पाते । ऐसों के बीच उन्हीं को मनस्वी माना जाता है, जो उचित के प्रति अटूट आस्था रखें और जो करना चाहिए उसे अन्यों का समर्थन-सहमति न मिलने पर भी एकाकी कर दिखाएँ । इसे दूध गरम करते ही मलाई के तैरकर ऊपर आ जाने के समकक्ष समझा जा सकता है ।

प्रतिभाएँ एकाकी बढ़कर अपने अग्रगमन की क्षमता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं । फिर सर्वत्र उनकी मनस्विता का लोहा माना जाने लगता है । दूसरे लोग भी उनका अनुकरण करते हैं, जिनकी जिम्मेदारियाँ

भारी हैं, वे ऐसे ही लोगों को तलाश करते रहते हैं । प्रामाणिकता की परख होने पर सब ओर से एक-से-एक बढ़कर भारी-भरकम जिम्मेदारियाँ उनके ऊपर आग्रहपूर्वक डाली जाने लगती हैं । वे उन्हें स्वीकार करते और जो कार्य लिया गया है, उसे सर्वांगपूर्ण ढंग से संपन्न कर दिखाते हैं ।

रेल का इंजन एकाकी चलता है । स्वयं दौड़ता है और अपने साथ भरे डिब्बों की लंबी शृंखला को घसीटते हुए निर्धारित लक्ष्य की दिशा में पटरी पर दौड़ाता चला जाता है । सर्वविदित है कि डिब्बों की तुलना में इंजन को अधिक महत्त्व मिलता है । अधिक मूल्यांकन भी होता है । यह और कुछ नहीं साहस भरी व्यवस्था का परिचय देने वाली ऊर्जा की ही परिणति है । प्रतिभाओं में यह सद्गुण उनके द्वारा स्वउपार्जित स्तर का, बड़ी मात्रा में पाया जाता है । वे औरों का मुँह ताकते हुए नहीं बैठे रहते, वरन् आगे बढ़कर औरों को अपने चुंबकत्व के कारण जोड़ते और साथ चलने के लिए बाधित करते हैं । सफलताओं का यही स्रोत है ।

यों प्रतिभा का दुरुपयोग भी हो सकता है । धन का, बल का, सौंदर्य का, कौशल का, नियोजन यदि भ्रष्ट-चिंतन और दुष्ट आचरण में किया जाए तो वैसा भी हो सकता है । आतंकवादी, अनाचारी, उच्छृंखल, उद्धत लोग प्रायः वैसा करते भी हैं । इतने पर भी यह निश्चित है कि कोई इस आधार पर न तो स्थिर प्रगति कर सकता है और न ही कोई ऐसी परंपरा पीछे छोड़ सकता है, जिसे सराहा जा सके । आज नहीं तो कल-परसों ऐसे लोग आत्मप्रताड़ना, लोकभर्त्सना से लेकर राजदंड और दैवी प्रकोप के भाजन बनते ही हैं । लालच और घृणा तो भीतर-बाहर से उन पर निरंतर बरसती ही रहती है ।

दूरदर्शी विवेकवान् अपनी श्रेष्ठता को विकसित करते हैं और अपने आदर्शवादी क्रियाकलापों के आधार पर प्रामाणिक माने जाते और विश्वस्त बनते हैं । जिन्होंने उच्चस्तरीय सफलताएँ पाईं, उनका अनुकरण करते और सहयोग देते असंख्यों देखे जाते हैं । इसीलिए 'प्रतिभा महासिद्धि' की साधना करने वाले अपने चरित्र की प्रामाणिकता को हर हालत में बनाए रहते हैं, भले ही इसके लिए अभावग्रस्त स्थिति में रहना पड़े और तात्कालिक मिल सकने वाली सफलता से वंचित रहना पड़े ।

प्रतिभा तत्संबंधी सिद्धांतों का मनन-चिंतन करते रहने भर से हस्तगत नहीं होती, उनको स्वभाव का अंग बनाना पड़ता है, चिंतन-चरित्र और व्यवहार में उन्हें भली प्रकार समाविष्ट करना पड़ता है । यह कार्य प्रत्यक्ष क्रियान्वयन के बिना संभव नहीं होता । विचार वे ही प्रौढ़ एवं प्रखर होते हैं, जो क्रिया में उतरते रहते हैं । डायनेमो घूमता है तो बैटरी चार्ज होती है । विचारों और कार्यों के समन्वय से ही व्यक्तित्व का स्तर बनता है । उसी आधार पर सफलता के क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण गौरव हस्तगत होता है । यही वह हुंडी है, जिसे किसी भी क्षेत्र में हाथों-हाथ भुनाया जा सकता है । बड़े काम करगुजरने वाली जन्मजात विभूतियाँ साथ लेकर कदाचित् ही कोई आते हैं । हर किसी को यह उपलब्धि अपने मनोयोग और प्रचंड प्रयास के आधार पर ही हस्तगत करनी होती है । सांसारिक दृष्टि से प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाले बड़े कार्य भी ऐसे ही लोगों ने संपन्न किए हैं । बहुमुखी सफलताओं का श्रेय उन्हीं पर बरसा है । ऐसे ही लोग समाज को स्थिरता देते और अवांछनीय उलटे प्रचलनों को उलटकर ठीक कर दिखाते हैं । समय का कायाकल्प करके वातावरण में नवजीवन का प्राण-प्रवाह भरते ऐसे ही लोगों को देखा जाता है ।

जिन व्यक्तियों ने युग परिवर्तन के सरंजाम को संभव कर दिखाया है, उनके क्रियाकलापों पर एक दृष्टि डालकर यह भली-भाँति जाना जा सकता है कि जब भी प्रतिभा का सुनियोजन सही दिशा में होता है, उस व्यक्ति का ही नहीं, वातावरण का भी कायाकल्प हो जाता है । महाप्रतापी राणा प्रताप व शिवाजी से लेकर सुभाषचंद्र बोस, मनस्वी गाँधी इन्हीं कुछ शताब्दियों में जन्मे महामानव हैं, जिन्होंने प्रतिभा के सुव्यवस्थित सुनियोजन से असंभव को संभव कर दिखाया । वस्तुतः महामानवों का जीवन अपने आप में एक प्रयोगशाला है । उनके उदाहरणों से बहुत कुछ सीखा और पाया जा सकता है ।

प्रतिभा परिवर्धन का प्रशिक्षण करने वाले कोई स्कूल कॉलेज कहीं नहीं हैं । इसके लिए निर्धारित सिद्धांतों को व्यवहार में उतारने के लिए अवसर और वातावरण स्वयं तलाशना पड़ता है । उस प्रकार के अवसर कहीं एक जगह एकत्रित नहीं मिलते । उन्हें दाने बीनने वाले की तरह झोली में भरना पड़ता है । पर इन दिनों एक ऐसा सुयोग सामने है, जिसके साथ संबंध सूत्र जोड़ने पर हर किसी को वह सुयोग हस्तगत हो सकता है । जिसके सहारे प्रतिभा संपादन का सौभाग्य अनायास ही प्राप्त हो सके, ऐसे सुयोग कभी-कभी ही सामने आते हैं और उन्हें कोई बिरले ही पहचानकर लाभ उठा पाते हैं । हनुमान् ने समय पहचाना और वे थोड़े ही समय में समुद्र लाँघने पर्वत उखाड़ने और लंका को मटियामेट बनाने का श्रेय प्राप्त कर सके । इसे समय की पहचान ही कहना चाहिए । यदि उस सुयोग का लाभ उठाना उनसे न बन पड़ता तो सुग्रीव के सेवक वानर रहकर ही उन्हें भी दिन गुजारने पड़ते ।

❑

युगसृजन के निमित्त प्रतिभाओं को चुनौती

प्रस्तुत समय, जिससे हम गुजर रहे हैं—संधिकाल है । यह युगसंधि का समय, अवसर न चूकने जैसा है । आपत्तिकाल में लोग निजी व्यवसाय छोड़कर दुर्घटना से निपटने के लिए दौड़ पड़ते हैं । अग्निकांड, भूकंप, दुर्भिक्ष, महामारी, दुर्घटना जैसे अवसरों पर उदार सेवाभावना की परीक्षा होती है । भावनाशील इस अवसर पर चूकते नहीं । उपेक्षा करने वाले तिरष्कृत जैसे होते और सेवासाधना में जुट पड़ने वाले सदा-सर्वदा के लिए लोगों के मन पर अपनी प्रामाणिक महानता की गहरी छाप छोड़ते हैं, जो कालांतर में उन्हें अनेक माध्यमों से महत्त्वपूर्ण वरिष्ठता प्रदान कराती है ।

इतिहास साक्षी है कि आपत्तिकाल में राजपूत घरानों से एक-एक सदस्य सेना में भरती होता था । सिख धर्म जिन दिनों चला था, तब भी उस विपन्न वेला में, उस प्रभाव क्षेत्र में आए हर परिवार ने अपने परिवार में से एक को 'सिख' सेना का सदस्य बनने के लिए प्रोत्साहित किया था । आज की वेला, तब की अपेक्षा कम विपन्न नहीं है । नवसृजन में संलग्न होने के लिए हर घर से एक प्रतिभा को आगे आना चाहिए और भारतभूमि की सतयुगी गरिमा को जीवंत रखने का श्रेय लेना चाहिए । इक्कीसवीं सदी में सतयुग की वापसी वाली संभावनाएँ सुस्पष्ट हैं । कुछेक चिह्न पहले से ही प्रकट हो रहे हैं । ऐसे व्यक्तित्व उभर रहे हैं, जो लोकनिर्वाह में कटौती करके अपनी भाव-संवेदनाएँ, आकांक्षाएँ एवं गतिविधियों को सृजन प्रयोजनों में समर्पित कर सकें, जिससे उनका समर्पण अंधकार में जलती मशाल की भूमिका निभाते हुए सबकी आँखों में चमक पैदा कर सके ।

स्वर्ग-मुक्ति, दिव्य-दर्शन आदि के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है और निराश भी रहना पड़ सकता है ? पर सत्प्रयोजनों के लिए प्रस्तुत

किया गया आदर्शवादी साहस व्यक्तित्व को ऐसा प्रामाणिक, प्रखर एवं प्रतिभावान् बनाता है, जिसके उपार्जन को दैवी संपदा के रूप में आँका जा सके; जिस पर आज की भौतिक संपदाओं, सुविधाओं को निछावर किया जा सके । धनाढ्य और विद्वान् कुछ लोगों पर ही अपनी धाक जमा पाते हैं, पर महामानव स्तर की प्रतिभाएँ इतिहास को, समस्त मानव जाति को कृतकृत्य करती हैं ।

प्रतिभाओं का प्रयोग जहाँ कहीं भी, जब कभी भी औचित्य की दिशा में हुआ है, वहाँ उन्हें हर प्रकार से सम्मानित-पुरस्कृत किया गया है । अच्छे नंबर लाने वाले छात्र पुरस्कार जीतते और छात्रवृत्ति के अधिकारी बनते हैं । सैनिकों में विशिष्टता प्रदर्शित करने वाले वीरता पदक पाते हैं । अधिकारियों की पदोन्नति होती है । लोकनायकों के अभिनंदन किए जाते हैं । संसार उन्हें महामानव का सम्मान देता है तथा भगवान् उन्हें हनुमान्, अर्जुन जैसा अपना सघन आत्मीय वरण करता है ।

युगसृजन बड़ा काम है । उसका संबंध किसी व्यक्ति, क्षेत्र, देश से नहीं वरन् विश्वव्यापी समस्त मानवजाति के चिंतन, चरित्र और व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन करने से है । पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ तो आँधी-तूफान की तरह गति पकड़ लेती हैं, पर उन्हें रोकना और तदुपरांत उत्कृष्टता की दिशा में उछाल देना असाधारण दुस्साहस भरा प्रयत्न है । कैंसर के मरीज को रोगमुक्त करना और नीरोग होने पर उसे पहलवान स्तर का समर्थ बनाना एक प्रकार से चमत्कारी कायाकल्प है । ऐसे उदाहरण सम्राट् अशोक स्तर के अपवाद स्वरूप ही दीख पड़ते हैं, पर जब यही क्रिया सार्वभौम बनानी हो तो कितनी दुरूह होगी, इसका अनुमान वे ही लगा सकते हैं, जिन्हें असंभव को संभव कर दिखाने का प्रण पूरा करना हो; जिन्हें करना कुछ न हो उनकी समीक्षा तो बाल-विनोद ही हो सकती है ।

दुस्साहस पर प्रतिभाएँ उतरती हैं—विशेषतया जब वे सृजनात्मक हों । कटे हुए अंगों के घाव भरना, उनमें दूसरे प्रत्यारोपण जोड़कर पूर्व स्थिति में लाना मुश्किल सर्जरी का ही काम है । युग की संमस्याओं को सुलझाने के लिए अनौचित्य को निरस्त करने और सृजन का अभिनव उद्यान खड़ा करने के लिए ऐसे व्यक्तित्व चाहिए जो परावलंबन की हीनता से, स्वार्थपरता की संकीर्णता से ऊँचे उठकर अपने को परिष्कृत करने के साथ-साथ वातावरण को संस्कार संपन्न बना सकने की उत्कंठा से अंतःकरण को भाव-संवेदनाओं से ओत-प्रोत कर सकें ।

आत्मबल बढ़ाने के लिए उपासना को सब कुछ माना जाता है और उसी के सहारे मनोकामनाओं की पूर्ति से लेकर स्वर्ग-मुक्ति तक देवताओं और भगवानों से अपनी मान्यताओं के अनुरूप छवि बनाकर दर्शन देने की अपेक्षा की जाती है । ऋद्धि-सिद्धियों की आशा भी कितने ही लोग लगाए रहते हैं और सफलता की कसौटी यह मानते हैं कि उन्हें चित्र-विचित्र, कौतुक-कौतूहल दृष्टिगोचर होते हैं । चमत्कार देखने और चमत्कार दिखाने तक ही उनकी सफलता सीमित रहती है, पर बात वस्तुतः ऐसी है नहीं । यदि आत्मशक्ति जागी तो उसका दर्शन आदर्शवादी प्रतिभा में ही अनुभव होगा । उसी में ध्वंस से निपटने और सृजन को चरितार्थ कर दिखाने की सामर्थ्य होती है । यही दैवी वरदान है । इसी को सिद्ध पुरुषों का अनुदान भी कह सकते हैं । यथार्थ खोजों-अन्वेषणों में भी यही तथ्य उभरकर आते हैं ।

भगवान् शंकर ने परशुराम को काल कुठार थमाया था, उन्होंने पृथ्वी को इक्कीस बार अनाचारियों से मुक्त कराया । सहस्रबाहु की अदम्य समझी जाने वाली शक्ति का दमन उसी के द्वारा संभव हुआ था । प्रजापति ने दधीचि की अस्थियाँ माँगकर इंद्र को वज्रोपम प्रतिभा प्रदान की थी, जिससे वृत्रासुर जैसे अजेय दानव से निपटा जा सका । अर्जुन

को गांडीव देवताओं से मिला था । क्षत्रपति शिवाजी की भवानी तलवार देवी द्वारा प्रदान की गई बताई जाती है । वस्तुतः यह किन्हीं अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख नहीं है, वरन् उस समर्थता का उल्लेख है, जो लाठियों या ढेलों से भी अनीति को परास्त कर सकती है । गाँधी के सत्याग्रह में उसी स्तर के अनुयायियों की आवश्यकता पड़ी थी ।

ऋद्धियों-सिद्धियों द्वारा किसी को न तो बाजीगर बनाया जाता है और न कौतुक दिखाकर मनोरंजन किया जाता है । विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ के बहाने अपने आश्रम में ले गए थे । वहाँ उन्हें बला-अतिबला विद्या प्रदान की थी । उनके सहारे वे शिव धनुष तोड़ने, सीता स्वयंवर जीतने, लंका की असुरता मिटाने और रामराज्य के रूप में सतयुग की वापसी संभव कर दिखाने में समर्थ हुए थे । विश्वामित्र ने ही अपने एक दूसरे शिष्य हरिश्चंद्र को ऐसा कीर्तिमान स्थापित करने का साहस प्रदान किया था, जिसके आधार पर वे तत्कालीन युगसृजन योजना को सफल बनाने में समर्थ हुए थे । साथ ही साथ हरिश्चंद्र के यश को भी उस स्तर तक पहुँचा सके थे, जिसकी सुगंध पर मोहित होकर देवता भी आरती उतारने धरती पर आए ।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त को कोई गढ़ा खजाना खोदकर नहीं थमाया था, वरन् ऐसा संकल्पबल उपलब्ध कराया था जिसके सहारे आक्रमणकारियों का मुँह तोड़कर चक्रवर्ती कहला सके थे । समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी के हौंसले इतने बुलंद किए थे कि वे अजेय समझे जाने वाले शासन को नाकों चने चबवाते रहे । छत्रसाल ने सिद्धपुरुष प्राणनाथ महाप्रभु से ही वह प्राण दीक्षा प्राप्त की थी, जिसके सहारे वे हर दृष्टि से राजर्षि कहला सके ।

देवताओं ने सिद्धार्थ को राजकुमार न रहकर धर्म-चक्र-प्रवर्तन में संलग्न होने का परामर्श दिया था । सिद्ध पुरुष माने जाने वाले गोरखनाथ,

मत्स्येंद्र नाथ के तप-वैभव के अधिकारी बने थे । रामानंद ने, कबीर को स्वर्ण खान कहीं नहीं सौंपी थी ? वरन् वह प्रतिभा प्रदान की थी जिसके कारण कुलीनता और विद्वत्ता के अभाव में भी अपने समय के प्रचंड प्रवर्तक के रूप में प्रख्यात् हुए । भगवान् के भक्तों में सर्वोपयोगी नारद माने जाते हैं । उन्हें वह ललक मिली थी कि जन-जन में भाव-संवेदना का बीजारोपण करते हुए अनवरत रूप से संलग्न रह सकें । पवन ने अपने पुत्र हनुमान् को वह वर्चस् प्रदान किया था कि रामचरित्र में मेरुदंड जैसी भूमिका का निर्वाह कर सके ।

गाँधी ने अपने प्रिय पात्र बिनोवा को महान् प्रयोजनों के लिए मर मिटने की भाव-संवेदना प्रदान की थी । उनके संपर्क में आने वाले अन्य लोगों ने भी जुझारू प्रतिभा पाई और अपने चरित्र तथा कर्तृत्त्व से जनमानस पर गहरी छाप छोड़ने में सफल हो सके ।

संत यादवेंद्र पुरी ने अपने शिष्य चैतन्य को जनजागरण के कर्मक्षेत्र में उतारा था । विरजानंद ने दयानंद को ऐसा ही पुरुषार्थ प्रकट करने के लिए उद्यत किया था । रामकृष्ण परमहंस द्वारा विवेकानंद को जिस मार्ग पर चलाया गया, वह लोकमंगल के लिए समर्पित होकर, स्वयं संकल्पवान् नर-रत्न की तरह चमकने और मूर्च्छित संस्कृति में प्राण चेतना फूँकने वाला राजमार्ग ही था ।

महर्षि अगस्त्य ने भगीरथ को राज-पाट छोड़कर गंगावतरण के महाप्रयास में संलग्न होने के लिए नियोजित किया था । लक्ष्य इतना उच्चस्तरीय था कि उनकी सफलता में योगदान देने के लिए स्वयं शंकर जी को कैलाश छोड़कर आना पड़ा था । योगी भर्तृहरि ने अपने भाई विक्रमादित्य को आदर्श शासक और भाँजे गोपीचंद को तत्त्वदर्शन के अवगाहन में संलग्न किया था । इससे अधिक और कुछ कोई अपने स्वजन संबंधियों को दे ही क्या सकता है ?

सम्राट् अशोक ने जो प्रेरणा पाई थी उसी को अपनाने के लिए अपने सुपुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को परिव्राजक के रूप में धर्मप्रचार के लिए समर्पित कर दिया था । स्वयं बुद्ध भी तो अपने पुत्र राहुल को इसी स्तर की दीक्षा दे चुके थे । बुद्ध परंपरा में आम्बपाली से लेकर कुमारजीव तक ऐसे अनेकों प्रतिभाशाली हुए जो भौतिक सुख भोगों से कोसों दूर रहकर धर्म प्रयोजनों में ही लगे रहते थे । मध्यपूर्व को भारतीय संस्कृति की छत्रछाया में लाने का श्रेय महाभाग कौडिन्य को जाता है, जिन्होंने उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन भर प्रयास जारी रखा ।

उन पुराण ग्रंथियों की गली-कूचों में भरमार है, जिन्होंने वैभव बढ़ाने, सुविधा भोगने, दर्प दिखाने और औलाद के लिए भरे खजाने छोड़कर मरने जैसी सफलताएँ अर्जित कीं । श्रम संभवतः उन्हें भी महापुरुषों से कम न करना पड़ा होगा, पर संकीर्ण स्वार्थपरता की परिधि से ऊँचे न उठने के कारण सुरदुर्लभ जीवन संपदा के व्यर्थ नियोजन पर पश्चाताप करते ही मरे होंगे । इसके विपरीत महर्षि कर्वे, हीरालाल शास्त्री, बाबासाहब आम्टे, महामना मालवीय जी, भामाशाह, स्वामी श्रद्धानंद, अहिल्या बाई, सुभाषचंद्र बोस जैसी विभूतियों को प्रातः स्मरणीय समझा जाता है, जिन्होंने स्वयं तो रोटी कपड़े पर निर्वाह किया, पर अपने समूचे वर्चस् को परमार्थ प्रयोजनों के लिए नियोजित कर दिया । विदेशी प्रतिभाओं में जापान के गाँधी कागावा, बेडेन पॉवेल, रूस के मार्क्स, लेनिन आदि को संसार के इतिहास में जगमगाते हीरकों की तरह आँका जाता है । वस्तुतः प्रतिभाएँ संसार के हर क्षेत्र में मौजूद हैं । धनाढ्यों, शासनाध्यक्षों, कलाकारों, व्यवसायियों, वैज्ञानिकों और मनीषियों को अपने-अपने ढंग से काम करते हुए देखा जा सकता है । उन्हें जो भी उत्तरदायित्व मिला, उसे उनकी प्रखरता और प्रचंडता ने आश्चर्यजनक सफलता के साथ संपन्न किया है । इन वर्गों को युगचेतना अछूता नहीं

छोड़ेगी, उन्हें झकझोरने और समय के अनुरूप बदलने के लिए बाधित करेगी । अब तक वे भले ही स्वार्थपरता और प्रमाद को प्रोत्साहित करते रहे हों; पर आगे उन्हें अपनी क्षमता को मोड़ना-मरोड़ना और सृजन प्रयोजनों के लिए नियोजित करना ही होगा ।

तूफानों, भूकंपों, विस्फोटों, आंदोलनों का उद्‌गम कहीं भी क्यों न रहा हो, जब वे गति पकड़ते हैं, तो व्यापक बनते चले जाते हैं । राजक्रांतियों का सिलसिला इसी प्रकार चला था और असंख्यों राजमुकुट अनायास ही धराशायी होते चले गए । सृजन की भी अपनी लहर है । कभी सतयुग में ऐसा ही प्रभावोत्पादक मानसून उठा होगा, उसने धरती पर मखमली फर्श बिछाते हुए स्वर्ग जैसा वातावरण विनिर्मित कर दिया होगा ।

रात्रि की तमिस्रा सदा नहीं रहती । दिन को भी प्रकट होने का अवसर मिलता है । तब छोटे पक्षी ही नहीं, गजराज भी अपनी चिंघाड़ और वनराज अपनी दहाड़ से दिशाओं को गुंजित करते दिखाई देते हैं । ऐसा ही सुयोग इन दिनों आ रहा है, यह आशा सबको रखनी चाहिए ।

❑

प्रतिभा संवर्धन का मूल्य भी चुकाया जाए

गाँधी युग में जो सत्याग्रही उभरकर आगे आए, वे स्वतंत्रता सेनानी कहलाए, यशस्वी बने । ताम्र पत्र, पेंशन और आवागमन के मुफ्त पास प्राप्त करने के लाभों से गौरवान्वित हुए । जो उनमें वरिष्ठ और विशिष्ट थे, वे देश का शासन सूत्र संचालन करने वाले मूर्द्धन्य बने । बापू के संपर्क में रहे नेहरू, पटेल जैसे अनेकों रत्न ऐसे हैं जिनके स्मारकों को नमन किया जाता है । इतिहास के पृष्ठों पर यशोगाथा पढ़कर भाव-विभोर हुआ जाता है । यह उनकी प्रचंड प्रतिभा का प्रतिफल मात्र है । यदि वे संकीर्ण स्वार्थपरायणों की तरह अपने मतलब से ही मतलब रखते, तो मात्र कुछ सुख-साधनों से मन बहला पाते, प्रकाश स्तंभ बनने के सुयोग सौभाग्य से तो उन्हें वंचित ही रहना पड़ता । जो उन दिनों कृपणता धारण किए रहे वे अग्रगामियों के साथ अपनी तुलना करने पर 'माया मिली न राम' वाली स्थिति पर पश्चाताप ही करते रहते हैं, पर बीता हुआ समय पुनः लौटता कहाँ है ?

बुद्ध, गाँधी, दयानंद, विवेकानंद, बिनोवा जैसों की महान् उपलब्धियाँ स्मरण करके हर विचारशील का अंतःकरण उमगता है कि यदि उन्हें ऐसा ही श्रेय मिल सका होता तो कितना अच्छा होता ? उस अवसर को गँवाकर वे जिस ललक-लिप्सा की पूर्ति का दिवा-स्वप्न देखते रहते हैं, उसे भी कौन साकार कर पाता है ? तृष्णा मरते समय तक प्रौढ़ ही बनी रहती है । शेखचिल्लियों का समुदाय कुबेर जैसा धनाढ्य और इंद्र जैसा प्रतापी बनने के सपने देखता है, पर अब निष्कर्ष की वेला में मात्र इतना ही प्रतीत होता है कि कोल्हू के बैल की तरह पिलते और पिसते हुए समय बीतता गया । श्मशान के भूत-पलीत की तरह डरते और डराते रहने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा ।

भाग्यवान् वे हैं, जिन्होंने आदर्शों के साथ रिश्ता जोड़ा, महानता का मार्ग अपनाया और ऐसा कुछ कर दिखाया, जिसका अनुकरण करते हुए असंख्यों को गौरव-गरिमा का लक्ष्य प्रदान करने वाला ऊर्जा भरा प्रकाश उपलब्ध होता रहे । मूर्खता और बुद्धिमत्ता के चयन के लिए इसी चौराहे पर सही निर्णय करने का अवसर है । वैसा अवसर सुयोग भी इन्हीं दिनों है, जिसका लाभ भगीरथ और अर्जुन ने अपनी उदात्त साहसिकता के बदले खरीदा था । वरदान अनायास ही किसी को कहाँ मिलते हैं ? देवता कुपात्रों और असमर्थों पर कृपा करते हैं । पात्रता की गहराई रहने पर ही वर्षा का पानी विशाल जलाशय के रूप में लहराता है ।

यह युगसंधि का प्रभात पर्व ऐसा है, जिसमें महाकाल को प्राणवान् प्रतिभाओं की असाधारण आवश्यकता पड़ रही है । दैवी प्रयोजन महामानवों के माध्यम से ही क्रियान्वित होते हैं । अदृश्य शक्तियाँ तो उनमें प्रेरणा भर भरती हैं । यह व्यक्ति का स्वतंत्र निर्धारण होता है कि उन्हें अपनाए या ठुकराए । कृष्ण ने अर्जुन को कहा था कि "दुष्ट कौरव तो पहले से ही मरे पड़े हैं । मैंने उनका पहले ही तेजहरण कर लिया है । तुझे तो धर्मयुद्ध में निरत होकर मात्र श्रेय भर गले धारण करना है ।" वस्तुतः युग की विकृतियों का शमन होना ही है । नवसृजन का ऐसा महायज्ञ जाज्वल्यमान होना है, जिससे आगामी लंबे समय तक सुख-शांति और प्रगति का वातावरण बना रहे, एकता और समता को मान्यता मिले, ध्वंस का स्थान सृजन ग्रहण करे और चेतन तथा भौतिक शक्तियों का नियोजन मात्र सत्प्रयोजनों के निमित्त होता रहे । इसी उज्ज्वल भविष्य को 'सतयुग की वापसी' नाम दिया गया है । अनीति की असुरता का दमन देवताओं की सामूहिक शक्ति-संघशक्ति दुर्गा के अवतरण से संभव हुआ था । लगभग उसी पुरातन प्रक्रिया का प्रत्यावर्तन

नए सिरे से, नए रूप में इन दिनों संपन्न होने जा रहा है । उस प्रवाह में सम्मिलित होने वाले सामान्य पत्तों की तरह हलके होते हुए भी सरिता की धाराओं पर सवार होकर बिना कुछ विशेष प्रयास के ही महानता के महासमुद्र में जा मिलने में सफल हो सकेंगे ।

अपने काम से, किसी से कुछ पाने के लिए कहीं जाना एक बात है और किसी समर्थ सत्ता द्वारा अपने सहायक के रूप में बुलाए जाने पर वहाँ पहुँचना सर्वथा दूसरी । पहली में एक पक्ष की दीनता और दूसरे पक्ष की स्वाभाविक उपेक्षा भर रहती है पर आमंत्रित अतिथि को लेने स्टेशन पर माला लेकर पहुँचना और सम्मानपूर्वक ठहराया जाता है । उसके वार्तालाप को भी प्रमुखता दी जाती है और ऐसा आधार खड़ा किया जाता है कि आमंत्रित व्यक्ति में निमंत्रण का उद्देश्य समझने और उसमें सहभागी बनने की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो । महाकाल द्वारा प्रज्ञा-परिजनों को भेजे गए आमंत्रण को इसी रूप में देखा-समझ जाना चाहिए ।

राम स्वयं ऋष्यमूक पर्वत पर गए थे और सुग्रीव-हनुमान् को सहयोग हेतु सहमत करके लौटे थे । रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद के घर जाकर उन्हें देव संस्कृति के पुनरुद्धार में संलग्न होने के लिए सहमत किया था । अर्जुन को स्वयं भगवान् कृष्ण ने समझाने से लेकर धमकाने तक की नीति अपनाकर युद्धरत होने के लिए बाधित किया था । समर्थ और शिवा के, चाणक्य और चंद्रगुप्त के बीच भी ऐसा ही घटनाक्रम बना था । साथ ही उन्हें आवश्यक शक्ति और सफलता प्रदान करने के लिए भी उपयुक्त तारतम्य बिठाया था । जिन्हें पारदर्शी दृष्टि प्राप्त है, वे देख सकते हैं कि महाकाल ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए प्राणवानों के सामने गिड़गिड़ाने का उपक्रम नहीं किया है, वरन् सुनिश्चित संभावनाओं में भागीदार बनकर अजस्र सौभाग्य प्रदान करने के लिए चुना है । इस

तरह बरसने वाले वरदान की उपेक्षा-अवमानना करना किन्हीं अदूरदर्शी हतभागियों से ही बन पड़ेगा । लोभ-मोह के बंधन में फँसने और लँधे रहने के लिए तो हीन स्तर के प्राणी भी स्वतंत्र हैं, फिर मनुष्य अपनी गरिमा भरे भविष्य को यदि उसी तुच्छता पर आधारित करने का हठ करे, तो उसे किस प्रकार समझदारों की पंक्ति में बिठाया जा सकेगा ?

सरकार मोरचे पर सैनिकों को लड़ने भेजती है, तो उनके लिए आवश्यक अस्त्रों, उपकरणों, वाहनों की, भोजन-आच्छादन की व्यवस्था भी करती है और उनके घर-परिवार के सदस्यों के निर्वाह हेतु वेतन भी प्रदान करती है । युगसृजन के लिए कटिबद्ध होने वालों को आवश्यक प्रतिभा से लेकर उपयुक्त परिस्थितियाँ उपलब्ध न हों, ऐसा हो ही नहीं सकता । नवसृजन की संभावना तो पूरी होने ही वाली है, क्योंकि उसके न बन पड़ने पर 'महाप्रलय' ही शेष रह जाती है, जो कि स्रष्टा को अभी स्वीकार नहीं ।

व्यक्ति और समाज अब इस कदर गुँथ गए हैं कि दोनों का पारस्परिक तालमेल पानी और मछली जैसा अविच्छिन्न हो गया है । कोई निजी उन्नति से, निजी सुविधा संपादन भर से सुखी नहीं रह सकता । संबद्ध वातावरण यदि विपन्न है तो किसी सज्जन की भी शांति सुरक्षित नहीं रह सकती । अग्नि और महामारी किसी घर विशेष तक सीमित नहीं रहती । गुंडागरदी एक जगह पनपेगी तो समूचे क्षेत्र में विग्रह खड़ा करने का निमित्त कारण बनेगी । बढ़ी हुई जनसंख्या और आधुनिक प्रगति के फलस्वरूप अब निजी जीवन को सही बना लेने भर से काम चलने वाला है नहीं । इसलिए जनमानस के गिरे हुए स्तर को उभारना प्रकारांतर से अपनी और अपने परिकर की सुरक्षा करना है । सामूहिक जीवन मनुष्य की नियति है । इन दिनों सामूहिकता और भी अनिवार्य

हो गई है । अपने मतलब से मतलब रखने की नीति अपनाने वाले यह नहीं समझते कि समुन्नत समाज के घटक ही वास्तव में सुखी रह सकते हैं ।

प्रतिभा संपादन के लिए विशेषतया उच्चस्तरीय वातावरण में रहना, उत्कृष्ट सोचना और आदर्शवादी क्रियाकलापों में निरत रहना चाहिए । निजी सुधार एवं अभ्युदय भी इसके बिना नहीं हो सकता । अपनी स्थिति लोकसेवी और उदारचेता सद्गुणी रखे बिना, किसी भी शारीरिक बनावट मात्र से प्रभावशाली होने का अवसर नहीं मिल सकता । सद्गुणों का बाहुल्य एवं अभ्यास ही किसी को इस योग्य बनाता है कि वह अन्यान्यों का सम्मान एवं सहयोग अर्जित कर सके । इसी सफलता के आधार पर किसी की प्रतिभा और गरिमा का वास्तविक मूल्यांकन हो सकता है ।

आवश्यक है कि संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति में ही अपनी समूची क्षमताएँ न खपा दी जाएँ । इसमें जितना लाभ दिखाई पड़ता है उसकी तुलना में घाटा अधिक है । व्यापक स्तर का सार्वजनीन स्वार्थ ही परमार्थ है । परमार्थपरायण अपना निज का हितसाधन तो निश्चित रूप से करते ही हैं, साथ ही चंदन वृक्ष की तरह निकटवर्ती लोगों को भी गरिमा प्रदान करते हैं । प्रतिभा संपादन के लिए जिस प्राथमिक कक्षा में पढ़े बिना काम नहीं चलता, वह है—सेवासाधना । उच्चस्तरीय सेवासाधना में दो ही तत्त्व प्रमुख हैं—एक सत्प्रवृत्ति संवर्धन, दूसरा दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन । इन दो प्रयासों को अपनाने के लिए अपने समय और साधनों का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहने का महत्त्व समझा जाना चाहिए । एक सुनिश्चित व्रतधारण कर उसका निर्वाह करते रहने में अपनी श्रद्धा-निष्ठा एवं मनस्विता का परिचय देना चाहिए । इसे 'प्रतिभा परिवर्धन' की अनिवार्य फीस मानकर चलना चाहिए । युग परिवर्तन का सरंजाम इसी माध्यम से संपन्न होगा ।

❑

प्रतिभा के बीजांकुर हर किसी में विद्यमान हैं

सड़क पर मोटर के पहिए दौड़ते दीखते हैं, पर इंजन का परदा उठाकर देखने पर प्रतीत होगा कि उसके भीतर तेल जलकर ऊर्जा उत्पन्न कर रहा है । उस उत्पादन में भी बैटरी और डायनेमो की अपनी-अपनी भूमिका है । उसी शक्ति से अनेक कलपुर्जे अपने-अपने ढंग से घूमते और मोटर को सड़क पर दौड़ाते रहते हैं । मानवी सत्ता के संबंध में भी यही बात है । उसकी प्रत्यक्ष हलचलें हाथ, पैर, सिर, धड़, आँख, मुँह आदि के माध्यम से कार्य करती दीख पड़ती हैं; पर त्वचा का ढक्कन उठाकर देखने से कुछ और ही प्रतीत होता है । हृदय का रक्त संचार, मांसपेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन श्वास-प्रश्वास आदि हरकतें भीतरी अवयव करते हैं और उनके घर्षण से ऊर्जा का वह उत्पादन होता है, जिसके माध्यम से शरीर के सभी अंग अपनी-अपनी निर्धारित क्रिया-प्रक्रिया संपन्न करते रहने में समर्थ होते हैं । इन सबके भीतर भी एक गहरी परत है, जो मस्तिष्क के मध्य भाग ब्रह्मरंध्र में, विद्युत् प्रवाह के उद्गम स्रोत का काम करती है । इस उद्गम का भी स्वतंत्र कर्तृत्त्व नहीं है । वह अखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त महाऊर्जा से संबंध जोड़कर जितना आवश्यक है, उतना ग्रहण करती रहती है ।

अंग अवयवों की बनावट तो रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वसा आदि से विनिर्मित प्रतीत होती है, किंतु वस्तुतः इनके बीच अरबों-खरबों जीवकोषों ऊतकों की ऐसी क्रियाशीलता विद्यमान दिखाई देती है, मानो किसी स्वतंत्र विश्व का उद्भव, अभिवर्धन, परिवर्तन उनके बीच हो रहा हो । यों जीवकोष अपने स्थान पर व्यवस्थित रूप से विद्यमान दीखते हैं; पर वे तेजी से अपना काम करते हुए, अपनी सीमित सत्ता को समाप्त कर लेते हैं । साथ ही वे एक और आश्चर्य प्रस्तुत करते हैं कि अपना समानांतर उत्तराधिकारी कोष बनाकर, अपने मरण से पूर्व स्थानापन्न कर

देते हैं, ताकि रिक्तता उत्पन्न न होने पाए । मृतक कोष कचरे के रूप में बहिर्गमन छिद्रों द्वारा बाहर निकलते रहते हैं । जीवित कोष अन्न, जल, वायु जैसे पोषक माध्यमों को ग्रहण करने से लेकर पचाने तक में लगे रहते हैं ।

कण-कण में निरंतर गतिशील यह प्रक्रिया इतनी द्रुतगामी होती है कि उसकी अनवरत क्रियाशीलता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । इतना बड़ा कायतंत्र इतने छोटे घटकों से मिलकर बना है, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है । उससे भी अधिक आश्चर्य इस बात का है कि प्रत्येक जीवकोष छोटे रूप में लगभग उसी क्रियाकलाप का अनुसरण करता रहता है, जो अपने सौर मंडल में गतिशील रहता है । यह सब कैसे होता है ? शक्ति कहाँ से आती है ? साधन कहाँ से जुटते हैं ? इन सबका उत्तर काय कलेवर के कण-कण में संव्याप्त और गतिशील विद्युत् प्रवाह की ओर संकेत करके ही दिया जा सकता है । चूँकि घटक अत्यंत छोटे हैं और उनमें काम करने वाली सचेतन स्तर की विद्युत् अत्यल्प मात्रा में आँकी जाती है, इसलिए वैसा कुछ अनुभव नहीं होता जैसा कि बिजली की अँगीठी या तारों को छूते समय होता है । फिर भी उनमें उपस्थित शक्ति की प्रचंडता सुनिश्चित है । यदि ऐसा न होता, तो असंख्य लघु घटकों से विनिर्मित काया का प्रत्येक घटक, अपने-अपने कामों को इतनी मुस्तैदी से, इतनी नपी-तुली सही रीति से कर न पाता ।

आकलनकर्त्ताओं ने हिसाब लगाया है कि यदि शरीर के छोटे-बड़े अनेकानेक अंग-प्रत्यंगों की बिजली को एकत्रित किया जा सके, तो उसकी शक्ति किसी विशालकाय बिजलीघर से कम न होगी । इतनी आपूर्ति किए बिना, जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत, जो असंख्य क्षेत्रों की अनेकानेक स्तर की गतिविधियाँ बिना रुके अनवरत रूप से काम करती रहती हैं, उनका इस प्रकार क्रियाशील रह सकना संभव न हुआ होता । औसत

पाँच फुट छह इंच का यह कलेवर अपने भीतर इतनी शक्ति-सामर्थ्य छिपाए हुए है, जिसे यदि वैज्ञानिक द्वारा स्थूल उपकरणों के माध्यम से उत्पन्न किया जाए तो उसके लिए मीलों लंबे विशालकाय बिजली घर की आवश्यकता पड़ेगी । इतना विराट एवं असीम संभावनाओं से भरा है यह काया का विद्युत् भंडार ।

साधारणतया इस विद्युत् प्रवाह का एक बहुत छोटा अंश ही काम आता है । उतना, जिससे हलकी-फुलकी दिनचर्या चलती रहे । आजीविका उपार्जन, उसके परिपालन, निद्रा-जाग्रति तथा छिटपुट काम ही इसके द्वारा संपन्न हो पाते हैं । क्रियाशील उतना ही अंश रहता है जो काम में आता रहता है । उथली साँस लेने वालों के फेफड़ों का थोड़ा ही अंश काम में आता है, फलतः शेष अंश निर्बल-दुर्बल बना, किसी प्रकार अपना अस्तित्व भर बनाए रहता है । आरामतलब लोगों के शरीर का अधिकांश भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है और उस दुर्बलता का लाभ उठाकर वहाँ कई प्रकार के रोगविषाणु जड़ जमा लेते हैं । वे काया को जीर्ण बनाकर गिरगिट की तरह रंग बदलते रहते हैं । यही बात मस्तिष्क के बारे में भी होती है । मनुष्य की इच्छा-आकांक्षाएँ सीमित होती हैं । वह उन्हीं को पूरी करने के लिए कल्पना-जल्पना करता रहता है । मन और बुद्धि का एक छोटा अंश ही इस प्रयोजन के लिए खपता है । जिन क्षमताओं का उपयोग नहीं हो पाता, वे प्रसुप्त स्थिति में चली जाती हैं और लगभग मूर्च्छित स्थिति में किसी कोने में छिपी पड़ी रहती हैं ।

मानवी विद्युत् भंडार की असीमितता, उपयोगिता और उसकी महती क्षमता का यदि विज्ञानसम्मत आकलन किया जा सके, तो प्रतीत होगा कि वह इतनी अधिक है कि जिसके सहारे अपना और दूसरों का इतना हितसाधन हो सकता है, जितना कि कभी-कभी मनुष्यकृत ऐतिहासिक चमत्कारों के विवरणों में पढ़कर हतप्रभ हो जाना पड़ता है । प्रचलित

भाषा में इन्हें दैवी वरदानों के नाम से पुकारा जाता है, ऋद्धि-सिद्धियों का भंडार कहा जाता है अथवा दिव्य विभूतियों के नाम से उनकी चर्चा होती रहती है । ऐसे संदर्भ भी प्रायः सही ही होते हैं, अतः मानना पड़ता है कि मनुष्य वस्तुतः असीम शक्तियों का भंडार है । इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि वह तप के बल पर देवताओं से उच्चस्तरीय विभूति-वरदान उपलब्ध कर सकता है; किंतु वास्तविकता इतनी ही है कि जो कुछ उभरता है, भीतर से ही उफनकर ऊपर आया हुआ होता है ।

जिन्हें पेट-प्रजनन की ही गरज है, जो लोभ, मोह और अहंकार से ऊँचे उठ सकने की आवश्यकता ही नहीं समझते, उनके संबंध में तो कहा ही क्या जाए ? किंतु जिन्हें कोई महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त करना है, उनके लिए एक ही उपाय है कि प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत् करके, उन्हें उस स्तर का अभ्यास कराए, जिसके बलबूते बड़े काम किए जाते हैं—बड़े लाभ अर्जित किए जाते हैं । दूसरों की सहायता पाने की बात को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए । अपना पुरुषार्थ जगे, तो यह स्वाभाविक है कि खिले हुए फूल को देखकर उस पर तितलियाँ मँड़राएँ और भौंरे यश गीत गाने की झड़ी लगाएँ ।

अध्यात्म दर्शन का सार निष्कर्ष इतना भर है कि अपने को जानो, 'आत्मानं विद्धि' । अपने को विकसित करो और ऐसी राह पर चलो जो कहीं ऊँचे लक्ष्य तक पहुँचाती हो । यह शिक्षा अपने आपके लिए है । इसे स्वीकार-अंगीकार करने के उपरांत ही वह प्रयोजन सधता है, जिसमें दूसरों से कुछ समर्थन, सहायता, अनुदान पाने की आशा की जाए । देवता भी तपस्वियों को ही वरदान देते हैं, बाकी तो फूल प्रसाद के दोने लिए, देव स्थानों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं । भिखारी

कितना कुछ कमा पाते हैं, इसे सभी जानते हैं । उन्हें जीवन भर अभावों की, उपेक्षा की शिकायत ही बनी रहती है ।

वस्तुस्थिति समझने के उपरांत उसी निमित्त उन्मुख होना चाहिए कि अपने को अधिक प्रामाणिक और अधिक प्रखर बनाने में जुट पड़ा जाए । मनौती मानते रहने की अपेक्षा यही अवलंबन सही और सच्चा है । इस हेतु कुछ कदम बढ़ाने से पूर्व यह अनुमान लगा लेना चाहिए कि अपने भीतर सामर्थ्य का अजस्र भंडार भरा पड़ा है । स्रष्टा ने मनुष्य को असाधारण सफलताएँ उपलब्ध कर सकने की संभावनाओं से भरा-पूरा बनाया है । आवश्यकता मात्र इतनी है कि अवरोध की झीनी दीवार को गिराने के लिए साहस जुटाया जाए । अंडों में जब चूजा समर्थ हो जाता है, तो वह भीतर से जोर लगाता है और छिलके को तोड़कर बाहर आता है । इसके बाद तो उसकी माता ही सहायता करने लगती है । प्रसव वेदना का कारण एक ही है कि गर्भस्थ बालक बाहर निकलने के लिए अपनी शक्ति प्रयोग करता है । यदि भ्रूण अति दुर्बल और मृत-मूर्च्छित हो, तो प्रसव की संभावना अतीव दुष्कर हो जाती है ।

गरमी संघर्ष से उत्पन्न होती है । हलचल और प्रगति भी उसी के सहारे बन पड़ती है । प्रतिभा परिष्कार के लिए भी वही करना पड़ता है । अखाड़े में कड़ी मेहनत किए बिना कोई पहलवान कैसे बने ? सैनिकों को अनेक प्रकार के कठिन अभ्यास आए दिन करने पड़ते हैं । नदियों का प्रवाह अनेक चट्टानों को उलटता हुआ आगे बढ़ता है । मोरचा जीतने के लिए रणक्षेत्र में अपने कौशल का परिचय देना होता है । भँवरों वाली तेजधार को चीरते हुए नाव को पार ले जाने वाले साहस का परिचय ही किसी नाविक को विशिष्टता का गौरव प्रदान करता है ।

प्रतिभा परिष्कार की आरंभिक शर्त है—अपने आपसे जूझना, इस हेतु आलस्य और प्रमाद से सर्वप्रथम लड़ना पड़ता है । उसके स्थान पर

चुस्त-दुरुस्त रहने की जागरूकता को धारण करना पड़ता है । निराशा, अनुत्साह, चिंता, खिन्नता जैसे मानसिक दुर्गुणों के साथ तब तक संघर्ष करना पड़ता है, जब तक कि उनके स्थान पर आशा, प्रसन्नता, उमंग, निश्चिंतता, निर्भयता और शिष्टता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ अपने आपको प्रतिष्ठित न कर लें । यह नित्य ध्यान रखने और निरंतर अभ्यास करने का विषय है, जिसे बिना रुके, बिना हारे, अनवरत रूप से क्रियान्वित ही किए रखना चाहिए ।

प्रतिभा त्रिवेणी की तरह है, जिसमें शारीरिक ओजस्, मानसिक तेजस् और अंतराल में सन्निहित वर्चस् को जगाना, उभारना और प्रखरता संपन्न बनाने के स्तर तक उठाना पड़ता है । संयम सध सके तो स्वस्थ रहने की गारंटी मिल जाती है । उपयुक्त काम का चुनाव करके, उसमें अभिरुचि, एकाग्रता और तत्परता का नियोजन किए रखा जाए, तो साधारण काम-काज भी इस अभ्यास के सहारे अधिकाधिक बुद्धिमत्ता और कुशलता प्रदान करते चलते हैं । इसी आधार पर शारीरिक ओजस् और मानसिक तेजस् की उतनी मात्रा उपलब्ध हो सकती है, जिस पर संतोष और गर्व अनुभव किया जा सके । सदाशयता पर सघन श्रद्धा के होने का नाम ही वर्चस् है । आदर्शवादिता इसी अवलंबन को अपनाती है और उत्कृष्टता को इससे कम में चैन नहीं पड़ता । वर्चस् जिसके भी अंतराल में उभरता है उसमें शालीनता की, सदाशयता की, सज्जनता की कमी नहीं रहती । इस दिव्यता का जितना अंश जिसके हाथ लग जाता है, वह उतने ही अंशों में धन्य हो जाता है ।

उच्चस्तरीय प्रतिभा ही ब्रह्मतेजस् है । उसी को ब्रह्मवर्चस् भी कहते हैं । उसे जिसने भी पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिया है, वह शरीर से सामान्य होते हुए भी अपनी चेतनात्मक प्रखरता के सहारे ऐसे पुण्य प्रयोजन संपन्न कराने में समर्थ रहा है कि उसे अनुकरणीय भी माना

जाए और अभिनंदनीय भी । भगवान् बुद्ध का उदाहरण प्रत्यक्ष है । उन्होंने अपने जीवनकाल में एक लाख भिक्षु-भिक्षुणी परिव्राजक बनाकर विश्व के कोने-कोने में धर्म-चक्र-प्रवर्तन के लिए भेजे थे और वे सभी एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ पाने में सफल हुए थे । अशोक और हर्षवर्धन ने उनके प्रतिपादन से प्रभावित होकर अपना विपुल-वैभव उनके आदेशों पर निछावर कर दिया था । आम्बपाली और अंगुलिमाल जैसों ने निकृष्टता का परित्याग कर, उत्कृष्ट स्तर का अपना कायाकल्प कर लिया था ।

चाणक्य की एकाकी योजना ने भारत पर आक्रमण करते रहने वाले आक्रांताओं, आतंकवादियों को उनके बिलों में वापस लौटने के लिए बाधित कर दिया था । अनेक अनुभवी उनके सहायक बने थे । नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना करने से लेकर उसके संचालन तक की जिम्मेदारी का निर्वाह उनकी प्रतिभा ही करती रही थी । चुंबक अपने समकक्षों को खींचता, जुटाता तो अनायास ही रहता है ।

महामना मालवीय जी आरंभ में सामान्य वकील और संपादक थे; पर जब उन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय के निर्माण का संकल्प लिया तो प्रायः पचास करोड़ की संपत्ति उन लोगों से जुटाई, जिनके साथ उनकी कोई पूर्व की जान-पहचान तक न थी ।

अर्जुन ने पाताल से गंगा उभारकर भीष्म को ताजा जल पिलाया था । भीष्म भी कुछ कम न थे । शर शैया पर पड़े हुए असह्य वेदना सहते हुए भी उन्होंने मौत से कह दिया था कि अभी मरने की फुरसत नहीं है । वह लौट गई और तब आई जब उत्तरायण सूर्य में उन्होंने चलने का मुहूर्त्त निश्चित किया था । मनस्वी के आगे नियति भी पानी भरती है । सावित्री ने यमराज के हाथों से अपने मृत पति को जीवित करा, वापस लौटा लिया था । दमयंती के नेत्र तेज से व्याध का जल

जाना प्रसिद्ध है । गौतम ऋषि के शाप से सगर पुत्रों की क्या दुर्गति हुई थी, यह भी इतिहास प्रसिद्ध है ।

राणा सांगा अस्सी गहरे घावों से आहत होते हुए भी मृत्युपर्यंत शत्रु से लड़ते रहे थे । वाल्टेयर ने अस्पताल की चारपाई पर पड़े-पड़े ही इतने महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे थे कि उनके पुरुषार्थ को देखते हुए आश्चर्यचकित हुए बिना रहा नहीं जाता । संसार के इतिहास में ऐसे अनेकों करोड़पतियों का उल्लेख है, जिनकी निजी योग्यता और पूँजी नहीं के बराबर थी, फिर नियति ने उन्हें अदम्य उत्साह, सूझबूझ के सहारे धन कुबेर बनने का अवसर प्रदान किया । बाटा से लेकर टाटा एवं हेनरी फोर्ड, रॉकफेलर तक की बड़ी नामावली इसी पंक्ति में खड़ी दीख पड़ती हैं ।

सरदार पटेल द्वारा बागी रियासतों को भी भारत में विलय के लिए सहमत कर लिया जाना ऐसा कार्य है, जिसमें उनके महान् व्यक्तित्व की झलक झाँकी मिलती है । बारडोली सत्याग्रह में भी वे अपना कमाल दिखा चुके थे । जापान के गाँधी कागाबा ने एक गंदे मुहल्ले में सेवाकार्य आरंभ करते हुए अंततः जापान के पतितोद्धारक के रूप में अद्‌भुत प्रतिष्ठा अर्जित की थी । बिहार का हजारी किसान अपनी लगन के बल पर उस क्षेत्र में हजार आम्र उद्यान लगाने में सफल हुआ था ।

ऐसे उदाहरणों की कमी नही है । वे भूतकाल में भी असंख्य थे और अब भी जहाँ-तहाँ एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी सफलताएँ अर्जित कर रहे हैं । इसमें व्यक्ति विशेष का नहीं, वरन् उसकी परिष्कृत प्रतिभा का ही चमत्कार दृष्टिगोचर होता है । यह हर किसी के लिए संभव है । आवश्यकता इतनी भर है कि लगन सच्ची हो और उसके लिए योजनाबद्ध रूप से पुरुषार्थ करने में कुछ उठा न रखा जाए ।

❑

बड़े कामों के लिए वरिष्ठ प्रतिभाएँ

मजबूत किलों को बिस्मार करने के लिए अष्टधातु की तोपों की गोलाबारी ही काम आती है । पहाड़ों को समतल बनाने के लिए डायनामाइट की सुरंगों का प्रयोग करना पड़ता है । रेल के डिब्बे पटरी से उतर जाने पर उन्हें उठाने के लिए बड़ी ताकत वाली क्रेन ही अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकती है । कठिन मोरचे जीतने के लिए प्रवीण-पारंगत दुस्साहसी सेनापति ही विजय वरण करते हैं । ऐसे बड़े कामों के लिए छिटपुट साधनों का उपयोग तो निरर्थक ही होता है ।

तलवार का वार सहने के लिए गेंड़े की खाल वाली ढाल चाहिए । सहस्रों टन भार लाद ले जाने वाले जलयान जो काम करते हैं, वह छोटी डोगियों से नहीं लिया जा सकता । भयंकर अग्निकांड से निपटने के लिए, बड़े आकार वाले फायर ब्रिगेड चाहिए । उबड़-खाबड़ क्षेत्रों को समतल बनाने के लिए बुलडोजरों से कम में काम नहीं चलता । दलदल में फँसे हाथी को उससे भी बड़े आकार वाला गजराज ही खींचकर किनारे पर लगाता है । नए नगरों और बड़े बाँधों के नक्शे, सूझ-बूझ वाले वरिष्ठ इंजीनियर ही बनाकर देते हैं ।

बड़े कामों का दायित्व उठाने और उन्हें करने की जिम्मेदारी असाधारण क्षमता संपन्नों को ही सौंपी जाती है । यों महत्त्व तो टट्टुओं और बकरों का भी है, पर उनकी पीठ पर हाथी वाली अंबारी नहीं रखी जा सकती । सौ खरगोश मिलकर भी एक चीते से दौड़ में आगे नहीं निकल सकते । बड़े कामों के लिए बड़ों की तलाश करनी पड़ती है ।

इन दिनों बड़ी उथल-पुथल होने जा रही है । शताब्दियों से संचित सड़ांध भरे कचरे को हटाया और ठिकाने लगाया जाना है । कँटीली झाड़ियों वाले जंगल के स्थान पर सुरम्य उद्यान खड़े करना सहज काम

नहीं है । धूल भरे, लावे जैसे जलते रेगिस्तान को भी लोगों ने लहलहाती हरियाली से सुरम्य बनाया है, पर इसके लिए पैनी सूझ-बूझ का परिचय देने और विपुल साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ती है । समुद्र को छलांगने और संजीवनी बूटी वाला पर्वत उखाड़कर लाने का चमत्कार हनुमान् ही प्रस्तुत कर सके थे । हर वानर ऐसा दुस्साहस कर दिखाने की हिम्मत नहीं कर सकता । असुरता का व्यापक साम्राज्य ध्वस्त करने और उसके स्थान पर सतयुगी रामराज्य का वातावरण बनाने के लिए बड़ों की बड़ी योजना और उपयुक्त साधन जुटाने की क्षमता ही उद्देश्य पूरा कर सकी थी । ऐसी आशा साधारण जन से नहीं की जा सकती । समुद्र सोखने की चुनौती अगस्त्य ही स्वीकार कर सकते थे ।

इन दिनों औचित्य की बाढ़ को रोकने और दलदल को मधुवन बनाने जैसी समय की चुनौती सामने है । विनाश के तांडव को रोकना और विकास का उल्लास भरा सरंजाम जुटाना ऐसा ही है; जैसे—खाई को पाटना भर ही नहीं, वरन् उस स्थान पर ऊँची मीनार खड़ी करने जैसा दुहरा पराक्रम । इस प्रवाह को पलटना ही नहीं, उलटे को उलटकर सीधा करना भी कह सकते हैं । यों मनुष्य ही असंभव को संभव कर दिखाते रहे हैं, पर उसके लिए कटिबद्ध होना ही नहीं अपने को क्षमता संपन्न सिद्ध करके दिखाना दुहरे पराक्रम का काम है । युगपरिवर्तन की इस विषम वेला में ऐसा ही कुछ बन पड़ने की आवश्यकता है, जैसा कि अंधकार से भरी तमिस्रा का स्वर्णिम आभा वाले अरुणोदय के साथ जुड़ना । इति और अथ का समन्वित संधिकाल यदाकदा ही आता है । इसकी प्रतीक्षा युग-युगांतरों तक करनी पड़ती है इन दिनों ऐसा ही कुछ होने जा रहा है ।

विभीषिकाओं का घटाटोप हर दिशा में गर्जन-तर्जन करता देखा जा सकता है । जो चल रहा है, उससे विपत्तियों का संकेत ही मिलता

है । दुर्बुद्धि ने चरम सीमा तक पहुँचकर ऐसी संभावना प्रस्तुत कर दी है, जिसे बुरे किस्म की दुर्गति ही कह सकते हैं । प्रवाह को और अधिक उत्तेजित कर देना सरल है, पर उसे उलटकर सृजन की दिशा में योजनाबद्ध रूप से नियोजित कर सकना ऐसा है, जिसकी आशा विश्वकर्माओं से ही की जा सकती है । उन्हीं के लिए दसों दिशाओं से पुकार उठ रही है । उन्हीं को खोज निकालने या नए सिरे से ढालने के लिए समय मचल रहा है । बड़े काम आखिर बड़ों के बिना कर ही कौन सकेगा ?

प्रश्न क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों से निपटने का नहीं है और न समुदाय विशेष से निपटने का । अभावों को दूर करने का भी नहीं है और न साधन जुटाने की अनिवार्यता जैसा । अति कठिन कार्य सामने यह है कि संसार भर के मानव समुदाय पर छाई हुई विचार विकृति का परिशोधन किस प्रकार किया जाए ? यह कार्य लेखनी, वाणी एवं प्रचार माध्यमों से भी एक सीमा तक ही हो सकता है, सो भी बड़ी मंदगति से, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि लोकचिंतन में गहराई तक घुसी हुई भ्रष्टता से कैसे निपटा जाए और उसके फलस्वरूप जो दुराचरण का सिलसिला चल पड़ा है, उसके उद्गम को बंद कैसे किया जाए ? धूर्तता इन दिनों इस कदर बढ़ी हुई है कि वह कानूनी दंड व्यवस्था से लेकर धर्मोपदेश स्तर की नीति मर्यादा को भी अँगूठा दिखाती है । सदाशयता का जोर-शोर से समर्थन करने वाले ही जब नए-नए मुखौटे बदलकर कृत्य-कुकृत्य करने की दुरभिसंधियाँ रचते रहे हैं, तो उन्हें कौन किस प्रकार समझाए ? जागते हुए को कोई क्या कहे ? क्या सोते से जाग पड़ने की आवश्यकता समझाए ? प्रचार माध्यम अब अपनी विश्वसनीयता खोते चले जा रहे हैं, क्योंकि उपदेष्टा ही कथन के ठीक विपरीत आचरण करें तो उसे क्या कहकर, किस प्रकार समझाया जाए ? उसकी बात पर कोई क्यों और किस आधार पर, कितना विश्वास करे ?

उपाय एक ही शेष रह जाता है कि ऐसी प्रतिभाएँ नए सिरे से उभरें, जो अपना निज का आदर्श प्रस्तुत करते हुए सिद्ध करें कि सही मार्ग पर चलना न तो घाटे का सौदा है, न असंभव और अव्यवहारिक । खरा उदाहरण प्रस्तुत करना ही एकमात्र ऐसा उपाय अभी भी शेष है, जिसके आधार पर आदर्श अपनाने के लिए लोगों को सहमत एवं प्रोत्साहित किया जा सकता है, चोर, जुआरी, लावारिस, व्यभिचारी, नशेबाज, अनाचारी जब अपनी कथनी और करनी में एकता दिखाकर अनेकों को अपने साथ चलने के लिए सहमत कर सकें, तो आदर्शों का अनुकरण करने के लिए तैयार करना भी कठिन नहीं है ।

प्राचीन काल में ऋषि ऐसे ही जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया करते थे । स्वयं को उच्च आदर्शों के अनुरूप स्वयं के आचरण बनाने-ढालने के कष्टसाध्य क्रम को ही तपश्चर्या कहा जाता रहा । वशिष्ठ हों या विश्वामित्र, चरक हों या याज्ञवल्क्य, सभी ने समय के अनुरूप नई शोध की, उसे स्वयं पर घटित करके उसकी प्रामाणिकता सिद्ध की और इसी आधार पर सारे समाज को लाभान्वित किया । बुद्ध इसी आधार पर अवतार कहलाए और गाँधी इसी प्रक्रिया की कसौटी पर कसे जाकर राष्ट्रपिता का सम्मान पा सके । वर्तमान समय की समस्याएँ भी युग प्रतिभाओं से इसी स्तर के समाधान चाहती हैं ।

प्रतिभाओं को दुहरे मोरचे पर लड़ने का अभ्यास करना चाहिए । उनमें से एक है दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन और दूसरा है सत्प्रवृत्ति संवर्धन । इन प्रयासों का शुभारंभ अपने निज के जीवनक्रम से करके इन्हें परिवार में प्रचलित किया जा सकता है । इसके बाद पड़ोसियों, स्वजन-संबंधियों, परिचित-घनिष्टों और उन सबको आलोक वितरण से लाभान्वित किया जा सकता है, जो अपने प्रभाव-परिचय क्षेत्र में आते हैं ।

अपने स्वभाव में अनेक ऐसी आदतें सम्मिलित हो सकती हैं, जो अखरती तो नहीं; पर लकड़ी में लगे घुन की तरह निरंतर खोखला करने में अनवरत रूप से लगी रहती हैं । इनसे निपटने के लिए मोरचाबंदी यहीं से आरंभ करनी चाहिए । सबसे बुरी किंतु सर्वाधिक प्रचलित कुटेव एक है—वह है आलस्य । चोरी अनेक तरह की है, किंतु अपने आपको और अपने सगे-संबंधियों को सबसे अधिक हानि पहुँचाने वाली है कामचोरी । इसमें प्रतीत भर ऐसा होता है कि हम आराम से रह रहे हैं, मजे के दिन काट रहे हैं, पर सच बात यह है कि इस कुटेव के कारण आदमी दिन-दिन अनुपयोगी, अनगढ़, अयोग्य, अक्षम, अशक्त होता जाता है । प्रगति की समस्त संभावनाएँ, आलसी को दूर से ही नमस्कार करके उलटे पैरों लौट जाती हैं ।

यह समझा जाना चाहिए कि पसीने की हर बूँद मोती होती है । जीवन की बहुमूल्य शृंखला, क्षणों के छोटे-छोटे कणों से मिलकर बनी है । समुन्नत वे रहे हैं जिन्होंने समय का मूल्य समझा और उसकी हर इकाई का श्रेष्ठतम एवं क्रमबद्ध व्यस्त उपयोग करने का तारतम्य बिठाया । जो आलस्य-प्रमाद में उसे गँवाते रहते हैं, धीमी गति और ढीले तारतम्य से उसे ज्यों-त्यों करके काटते रहते हैं, वे किसी प्रकार अपनी मौत के दिन पूरे भर कर पाते हैं । उन्हें और तो कुछ मिलना ही क्या था, प्रतिभा परिवर्धन के सहज लाभ तक से वे वंचित रह जाते हैं । यह दुर्घटना अपने या अपने किसी प्रिय पात्र के जीवन में घटने न पाए; इसका विशेष सतर्कतापूर्वक ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है । लंबे समय के भारी और कठिन काम करने वालों को बीच-बीच में थोड़ा सुस्ताने की आवश्यकता अवश्य पड़ती है, पर उसकी पूर्ति थोड़ी देर के लिए काम या मन बदलने भर से पूरी हो जाती है । हृदय, जन्म के दिन से लेकर मृत्युपर्यंत धड़कता रहता है । इसी अवधि में वह कुछ

क्षणों का विश्राम भी ले लेता है । हमारे भी काम और विश्राम के बीच इसी प्रकार का तालमेल बिठाया जाना चाहिए ।

अपने दायित्व की क्रमबद्ध व्यवस्था बना लेना इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति की दूरदर्शिता, विवेकशीलता और कार्यकुशलता उच्चस्तर की है । कारखानों-दफ्तरों में, मैनेजरों की योग्यता पर उनका संचालन और विकास निर्भर रहता है । शासन में, प्रांतों के संरक्षक गवर्नर माने जाते हैं । अँगरेजी शासन के जमाने में भारत के प्रधान व्यवस्थापक को गवर्नर जनरल कहते थे । वह पद सबसे ऊँचा माना जाता था । सुपरिंटेंडेंट शब्द भी प्रायः इसी अर्थ का बोधक है ।

महत्त्वपूर्ण सफलताएँ जब भी, जहाँ भी, जिन्हें भी मिली हैं; उनमें व्यवस्था तंत्र की प्रमुख भूमिका रही है । सेनापतियों का कौशल उनकी रणनीति के आधार पर आँका जाता है । योजनाबद्ध उपक्रम बनाकर ही विशालकाय निर्माण कार्य बन पड़ते हैं । श्रम को, श्रमिकों को, साधनों को पर्याप्त मात्रा में जुटा लेने पर भी इस बात की गारंटी नहीं होती कि जिस स्तर की जितनी सफलता अभीष्ट थी, वह मिल ही जाएगी । यह संभावना इस बात पर टिकी रहती है कि आज के उपलब्ध साधनों का किस प्रकार श्रेष्ठतम उपयोग करते बन पड़ा । यह इस बात पर निर्भर रहता है कि हाथ के नीचे जो काम हैं, उसके अनुकूल और प्रतिकूल पक्ष की, हर हलचल और समस्या को कितनी गंभीरता और यथार्थता के साथ आँका गया ? समय रहते उनसे निपटने का किस प्रकार जुगाड़ बिठाया गया ? सफलता ऐसे ही तेजस्वियों का वरण करती है । श्रेयाधिकारी वे ही बनते हैं जो मात्र अपने जिम्मे के काम को बेगार की तरह भुगत लेते हैं; उन्हें श्रमिक भर कहा जा सकता है । व्यवस्थापक का श्रेय तो उन्हें मिल ही नहीं पाता । परिपूर्ण दिलचस्पी, एकाग्र मनोयोग, समुचित उत्साह और आगे बढ़ने का अदम्य साहस मिलकर ही ऐसी

स्थिति विनिर्मित करते हैं, जिसमें बड़े काम सध सकें; भले ही प्रयत्नकर्त्ता साधारण साधनों, साधारण योग्यताओं वाला ही क्यों न हो ? ऐसे लोग परिस्थितियों की प्रतिकूलता से भयभीत नहीं होते । उन्हें अनुकूल बनाने में अपनी समग्र क्षमता को दाँव पर लगाते हैं । ऐसे ही लोग नेतृत्व कर सकने के अधिकारी होते हैं । यों ऊँची कुरसी पर बैठने और पदवी पाने के लिए तो नर-वानर भी लालायित रहते हैं ।

निजी जीवन में प्रतिभा परिष्कार का शुभारंभ आलस्य और प्रमाद से निपटने को वरीयता देकर करना चाहिए । छोटे काम सहायकों से कराते हुए बड़े-कठिन और वजनदार कार्यों का दायित्व अपने कंधों पर ओढ़ना चाहिए । हलके काम तलाश करने और किसी प्रकार मौज-मजे में समय काटने की आदत मनुष्य को आजीवन अनगढ़ ही बनाए रहती है । जो अपने हिस्से के काम के साथ-साथ समूचे संबद्ध क्षेत्र के हर पक्ष के उतार-चढ़ावों का ध्यान रखते हैं और संबद्ध व्यक्तियों को उसमें सुधार के आवश्यक परामर्श प्रस्ताव के रूप में नम्रतापूर्वक देते रहते हैं, वस्तुतः उन्हीं को सूत्र संचालक समझा जाता है । ऐसे लोग अहंकारी और आग्रही नहीं होते । आदेश भी नहीं देते । अपने प्रस्ताव इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिसमें अपने अहंकार की, विशेषज्ञ होने की गंध न आती हो और दूसरों पर आक्षेप या दोषारोपण भी न लदता हो । सत्परामर्श की ही नहीं, तिरस्कारपूर्ण आदेश की ही अवहेलना होती है, कारण कि इसमें दूसरों के स्वाभिमान को चोट जो लगती है ।

कोल्हू का बैल भी अपने नियत काम में लगा रहता है । विशेषता उसकी है, जो संबद्ध परिकर के हर पक्ष पर ध्यान रखता है । संभावनाओं की कल्पना करता है और शतरंज की गोटियों की तरह सतर्कतापूर्वक बाजी जीतने वाली चाल चलता रहता है । व्यवस्थापक ऐसे ही लोग बन पाते हैं और वे न केवल अपने काम की, वरन् समूचे संबद्ध का

सुनियोजन कर सकने की क्षमता सिद्ध करते हुए, अगले दिनों अधिक ऊँची श्रेणी का दायित्व सौंपे जाने का श्रेय उपलब्ध करते हैं । व्यावहारिक क्षेत्र का धर्मात्मा ऐसे ही लोगों को कहना चाहिए । अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि दार्शनिक-नैतिक सद्गुण तो प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरांत ही सफलतापूर्वक संचित किए जा सकते हैं । आरंभ तो निजी जीवन में उत्साह भरी व्यस्तता अपनाने से होता है । परिवार क्षेत्र में प्रतिभाशालियों द्वारा, व्यवस्था संबंधी प्रगति प्रयोग करना सरल पड़ता है । परिवार के सदस्यों से निरंतर संपर्क रहता है, उनके साथ आत्मीयता भरा बंधन भी रहता है; इसलिए अनुशासन पालने के लिए उन्हें अनुरोध एवं आग्रह के आधार पर अधिक अच्छी तरह सुनियोजित किया जा सकता है । इसी अभ्यास को जब व्यवसाय या समाज क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है, तो उन्हें बड़े क्षेत्र की बड़ी सफलता का श्रेय भी अधिक मिलता है और व्यक्तित्व में प्रतिभा परिवर्धन का लाभ भी अनवरत रूप से मिलता चला जाता है ।

❑

उत्कृष्टता के साथ जुड़ें, प्रतिभा के अनुदान पाएँ

प्रतिभा किसी पर आसमान से नहीं टपकती । उसे पुरुषार्थपूर्वक, मनोबल के सहारे अर्जित करना पड़ता है । अब तक के प्रतिभाशालियों के प्रगतिक्रम पर दृष्टिपात करने से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि अपनाए गए काम में उल्लास भरी उमंगें उमड़ती रहीं, मानसिक एकाग्रता के साथ तन्मयता जुटाई गई, पुरुषार्थ को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर अवरोधों से जूझा गया तथा प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलकर अपनी प्रखरता का परिचय दिया गया । सफलताएँ इसी आधार पर मिलती हैं । सफलता मिलने पर हौसले बुलंद होते हैं । दूने उत्साह से काम करने को जी करता है । इस प्रयास में प्रतिभा विकसित होती है और परिपक्व भी बनती है । उत्कर्ष यही है । अभ्युदय का श्रेय इसी आधार पर आँका जाता है । इक्कीसवीं सदी प्रतिभावानों की क्रीड़ास्थली होगी । उन्हीं के द्वारा वह कर दिखाया जाएगा जो असंभव नहीं तो कष्टसाध्य तो कहा ही जाता रहा है ।

हवा का रुख पीठ पीछे हो तो गति में अनायास ही तेजी आ जाती है । वर्षा के दिनों में बोया गया बीज सहज ही अंकुरित होता है और उस अंकुर को पौधे के रूप में लहलहाते देर नहीं लगती । वसंत में मादाएँ गर्भधारण के कीर्तिमान बनाती हैं । किशोरावस्था बीतते-बीतते जोड़ा बनाने की उमंग अनायास ही उभरने लगती है । वातावरण की अनुकूलता में, उस प्रकार के प्रयास गति पकड़ते हैं और प्रायः सफल भी होते हैं ।

दिव्यदर्शी अंतःस्फुरणा के आधार पर यह अनुभव करते हैं कि समय के परिवर्तन की ठीक यही वेला है । नवयुग के अरुणोदय में अब अधिक विलंब नहीं है । जनमानस वर्तमान अवांछनीयताओं से खीझ और ऊब उठा है । उसकी आकुलता, आतुरता के साथ वह दिशा अपना रही है,

जिस पर चलने से घुटन से मुक्ति मिल सके और चैन की साँस लेने का अवसर मिल सके । साथ ही विश्व वातावरण ने भी अपना ऐसा निश्चय बनाया है कि अनौचित्य को उलटकर औचित्य को प्रतिष्ठित करने में अनावश्यक विलंब न किया जाए । उथल-पुथल के ऐसे चिह्न प्रकट हो रहे हैं जो बताते हैं कि नियति की अवधारणा-सदाशयता की ज्ञानगंगा का अवतरण, आज की आवश्यकता के अनुरूप इन्हीं दिनों बन पड़ना सुनिश्चित है ।

दुर्दांत रावण का अंत होना था, तो दो तापसी युवक ही उस विशाल परिकर को धराशायी करने में समर्थ हो गए । दुर्धर्ष हिरण्यकशिपु हारा और प्रह्लाद का सिक्का जम गया । समय आने पर, किसी दिग्भ्रांत करने वाले झाड़-झंखारों के जंगल को दावानल बनकर नष्ट करने में एक चिनगारी भी पर्याप्त हो सकती है । प्रलय की चुनौती जैसी ताड़का को राम ने और पूतना को कृष्ण ने बचपन में ही तो धराशायी कर दिया था । महाकाल का संकल्प यदि युग परिवर्तन का तारतम्य इन्हीं दिनों बिठा लें, तो किसी को भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।

निकट भविष्य की कुछ सुनिश्चित संभावनाएँ ऐसी हैं, जिनमें हाथ डालने वाले सफल होकर ही रहेंगे । अर्जुन की तरह नियति द्वारा पहले से ही मारे गए विपक्षियों का हनन करके अनायास ही श्रेय और प्रेय का दुहरा लाभ प्राप्त करेंगे । इसी माहौल में उन्हें प्रतिभा परिवर्धन का वह लाभ भी मिल जाएगा, जिसके आधार पर मूर्द्धन्य युगशिल्पियों में उनकी गणना हो सके ।

अगले दिनों प्रचलित दुष्प्रवृत्तियों में से अधिकांश अपनी मौत मरेंगी, जिस प्रकार शीत ऋतु में मक्खी मच्छरों का प्रकृति परंपरा के अनुसार अंत हो जाता है । अंधविश्वास, मूढ़मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, अंधपरंपराएँ, दूरदर्शी विवेकशीलता का उषाकाल प्रकट होते ही, उल्लू-चमगादड़ों की

तरह अपने कोटरों में जा घुसेंगी । संग्रही और अपव्ययी जिस प्रकार आज अपना दर्प दिखाते हैं, उसके लिए तब कोई आधार शेष न रहेगा । संग्रही, आलसी और लालची तब भाग्यवान् होने की दुहाई न दे सकेंगे । एक और भी बड़ी बात यह होगी कि चिरकाल से उपेक्षित नारी वर्ग न केवल अपनी गरिमा को उपलब्ध करेगा, वरन् उसे नर का मार्गदर्शन-नेतृत्व करने का गौरव भी मिलेगा । पिसे हुए, पिछड़े हुए ग्राम उभरेंगे और उन सभी सुविधाओं से संपन्न होंगे, जिनके लिए उस क्षेत्र के निवासियों को आज शहरों की ओर भागना पड़ता है । समता और एकता के मार्ग में अड़े हुए अवरोध एक-एक करके स्वयं हटेंगे और औचित्य के विकसित होने का मार्ग साफ करते जाएँगे । सम्मान वैभव को नहीं, उस वर्चस्व को मिलेगा जो आदर्शों के लिए उत्सर्ग करने का साहस सँजोता है । पाखंड का कुहासा पिछले दिनों कितना ही सघन क्यों न रहा हो, अगले दिनों उसके और लंबे समय तक पैर जमाए रहने की कोई संभावना नहीं है ।

इन तथ्यों के प्रकटीकरण पर विश्वास करते हुए जो तद्नुरूप अपनी गतिविधियों में परिवर्तन करेंगे, वे हर दृष्टि से नफे-ही-नफे में रहेंगे । आज का दृष्टिकोण जिसे घाटा बताता है, उपहासास्पद बताता है कल वैसी स्थिति न रहेगी । लोग वास्तविकता को अनुभव करेंगे और समय रहते अपनी भ्रांतियों को बदल लेंगे ।

जीवंतों और जाग्रतों को इन दिनों युगचेतना अनुप्राणित किए बिना रह नहीं सकती । उन्हें ढर्रे का जीवन जीते रहने से ऊब उत्पन्न होगी और चेतना अंतराल में ऐसी हलचलों का समुद्र मंथन खड़ा करेगी, ऐसा कुछ करने के लिए बाधित करेगी, जो समय को बदलने के लिए अभीष्ट एवं आवश्यक है । साँप नियत समय पर केंचुली बदलता है । अब ठीक यही समय है कि प्राणवान् प्रज्ञावान् अपना केंचुल बदल डालें । अपनी

समग्र क्षमता सँजोकर दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करें, जिससे भावी क्रियाकलापों में ऐसे तत्त्वों का समावेश हो, जिन्हें अनुकरणीय-अभिनंदनीय माना जा सके । अंतराल में उत्कृष्ट उमंगें और क्रियाकलापों का, आदतों का, नए सिरे से ऐसा निर्धारण करें, जो युगशिल्पियों के लिए प्रेरणाप्रद बन सके । आदर्शों को महत्त्व दें । यह न सोचें कि तथाकथित सगे संबंधी क्या परामर्श देते हैं ? प्रह्लाद, विभीषण, भरत, मीरा आदि को कुटुंबियों का नहीं, आदर्शों का अनुशासन अपनाना पड़ा था । उच्चस्तरीय साहस के प्रकटीकरण का यही केंद्रबिंदु है कि जीवन को श्रेय साधना से ओत-प्रोत करके दिखाया जाए । यह प्रयोजन संयम और अनुशासन अपनाए जाने की अपेक्षा करता है । प्रचलन तो ढलान की ओर लुढ़कने का है । पानी नीचे की ओर बहता है, ऊपर से नीचे गिरता है । उत्कृष्टता की ऊँचाई तक उछलने के लिए शूरवीरों जैसा साहस दिखाना पड़ता है । इस प्रदर्शन को अभी टाल दिया जाए तो संभव है ऐसा अवसर फिर जीवन में आए ही नहीं ।

मेघमंडल जब घटाटोप बनकर उमड़ते-गरजते हैं तो कृषिकर्मियों के मन आशा-उत्साह से भरकर बल्लियों उछलने लगते हैं । इंद्र वज्र सौ-सौ बार झुककर उनकी सलामी देता है । अँधेरा आकाश प्रकाश से भर जाता है और मोर नाचते एवं पपीहे कूकते हैं । हरीतिमा उनकी प्रतीक्षा में मखमली चादर ओढ़े मुस्कराती पड़ी रहती है । यह मनुहार मेघों की ही क्यों होती है ? खोजने पर पता चलता है कि वे संचित जलराशि समेट, अपने आपको अति विनम्र बनाकर उसे धरती पर बिखेर देते हैं ।

प्रतिभा परिवर्धन के उद्दंड उपाय तो अनेक हैं । उन्हें आतंकवादी-अनाचारी तक अपनाते और प्रेत-पिशाचों की तरह अनेक को भयभीत कर देते हैं; किंतु स्थिरता और सराहना उन्हीं प्रतिभावानों के साथ जुड़ी रहती है, जो शालीनता अपनाते और आदर्शों के प्रति अपने वैभव को

उत्सर्ग करने में चूकते नहीं । ऐसे लोग शबरी, गिलहरी, केवट स्तर के ही क्यों न हों, अपने को अजर-अमर बना लेते हैं और अनुकरण करने के लिए अनेकों को आकर्षित करते हैं । उनकी चुंबकीय विलक्षणता न जाने क्या-क्या, कहाँ-कहाँ से बटोर लाती है और बीज को वृक्ष बनाकर खड़ा कर देती है ।

प्रतिभा परिष्कार का अजस्र लाभ उठाने के लिए इन दिनों स्वर्ण सुयोग आया है । युगसंधि की वेला में, जीवट वाले प्राणवानों की आवश्यकता अनुभव की गई है । अवांछनीयताओं से ऐसे ही पराक्रमी जूझते हैं और हनुमान्, अंगद जैसे अनगढ़ होते हुए भी लंका को धराशायी बनाने के एवं रामराज्य का सतयुगी वातावरण बनाने के दोनों मोरचों पर अपनी समर्थ क्षमता का परिचय देते हैं । ऐसी परीक्षा की घड़ियाँ सदा नहीं आतीं । जो समय को पहचानते और बिना अवसर चूके अपने साहस का परिचय देते हैं, उन्हें प्रतिभा का धनी बनने में किसी अतिरिक्त अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । संयम और साहस का मिलन ही वरिष्ठता तक पहुँचा देता है । पुण्य और परमार्थ का राजमार्ग ऐसा है, जिसे अपनाने पर वरिष्ठता का लक्ष्य हर किसी को मिल सकता है । आत्मसाधना और लोकसाधना दोनों एक ही लक्ष्य के दो पहलू हैं । जहाँ एक को सही रीति से अपनाया जाएगा, वहाँ दूसरा उसके साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ जाएगा ।

लक्ष्य और उपक्रम निर्धारित कर लेने के उपरांत यह निर्णय करना अति सरल पड़ता है कि कौन अपनी मनःस्थिति और परिस्थिति के अनुसार, संपर्क परिकर की आवश्यकताओं को देखते हुए, किन क्रियाकलापों में हाथ डाले और प्रगति का एक-एक चरण उठाते हुए, अंततः बड़े-से-बड़े स्तर का क्या कुछ कर गुजरे ? यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि व्यक्ति अपने प्रभामंडल संपन्न क्षेत्र के साथ जुड़कर ही पूर्ण बनता है । अकेला

चना तो कभी भी भाड़ फोड़ सकने में समर्थ नहीं होता । अपने जैसे विचारों के अनेक घनिष्टों को साथ लेकर और सहयोगपूर्वक बड़े कदम उठाना ही वह रीति-नीति है, जिसके सहारे अपनी और साथियों की प्रतिभा को साथ-साथ चार चाँद लगते हैं ।

सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय परब्रह्म-परमात्मा प्रतिभाओं का पुंज है । उसके साथ संबंध जोड़ने पर संकीर्ण स्वार्थपरता में तो कटौती करनी पड़ती है पर साथ ही यह भी सत्य है कि अग्नि के साथ संबंध जोड़ने वाला ईंधन का ढेर, ज्योतिर्मय ज्वाल माल की तरह दमकने लगता है । उत्कृष्टता के साथ जुड़ने वालों में से किसी को भी यह नहीं कहना पड़ता कि उसे प्रतिभा परिकर के भांडागार में से किसी प्रकार की कुछ कम उपलब्धि हस्तगत हुई ।

दिशा निर्धारित कर लेने पर मार्गदर्शक तो पग-पग पर मिल जाते हैं । कोई न भी मिले तो अपनी ही अंतरात्मा उस आवश्यकता की पूर्ति कर देती है । प्रतिभा का धनी न कभी हारता है और न अभावग्रस्त रहने की शिकायत करता है । उसे किसी पर दोषारोपण करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि उन्हें अमुक ने सहयोग नहीं दिया या प्रगति पथ को रोके रहने वाला अवरोध अटकाया । प्रतिभा ही तो शालीनता और प्रगतिशीलता की आधारशिला है ।

❑

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस,मथुरा